मकुटागमः

(क्रिया-चर्यापादौ)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः

पं० व्रजवल्लभद्विवेदः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाडी मठ, वाराणसी-२२१००१

शोधप्रकाशन – ग्रन्थमाला — ३

मकुटागमः

(क्रिया-चर्यापादौ)

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः
पं० व्रजवल्लभद्विवेदः
शैवभारती - शोधप्रतिष्ठान - निदेशकः

प्रकाशकः
शैवभारती – शोधप्रतिष्ठानम्
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी - २२१००१

प्रकाशकः
शैवभारती - शोधप्रतिष्ठानम्
डी० ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ
वाराणसी – २२१००१

प्रथम संस्करण, सन् १९९४

मूल्यम् :

मुद्रक
जौहरी प्रिन्टर्स, वाराणसी

Research Publications Series — 3

MAKUṬĀGAMAḤ

KRIYĀ-CARYĀPĀDAU

Translation with Notes

Edited by
Pt. Vrajavallabha Dwivedi
Director, Shaiva Bharati Shodhapratishthanam

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
Jangamawadimath, Varanasi—221001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221001

First published 1994

Price:

Printed at :
JAUHARI PRINTERS, VNS.,

समर्पण
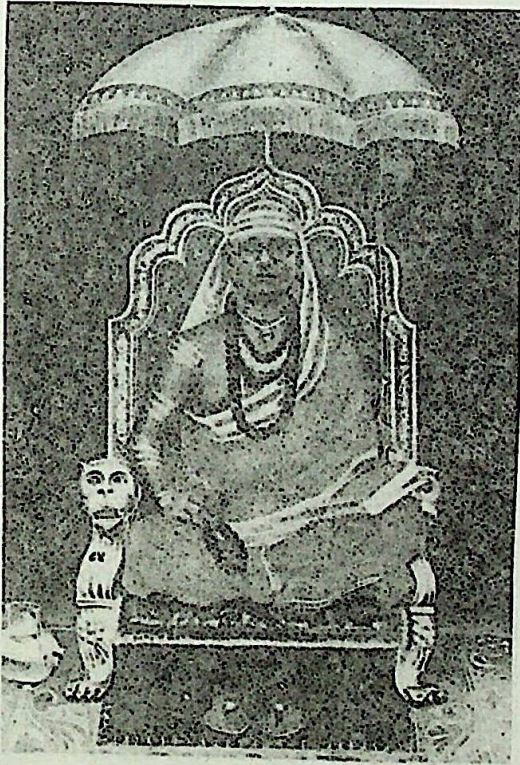
शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की स्थापना जिनकी संकल्पना रही,
उस महान् विभूति काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासन के
८४ वें पीठाधिपति लिंगैक्य श्री १००८ जगद्गुरु
वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी जी को
यह आगम-सुमन समर्पित

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संस्थापक

श्री काशी विश्वाराध्य ज्ञानसिंहासनाधीश्वर
श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी का

शुभाशीर्वचन

भगवान् शिव ने लोकोद्धार के लिये अपने सद्योजात मुख से ऋग्वेद का, वामदेव मुख से यजुर्वेद का, अघोर मुख से सामवेद का, तत्पुरुष मुख से अथर्ववेद का और ईशान मुख से अट्ठाईस शैवागमों का आविर्भाव किया। कामिक से वातुल पर्यन्त इन शैवागमों की संख्या अट्ठाईस है। प्रत्येक आगम ज्ञानपाद, क्रियापाद, योगपाद और चर्यापाद नामक चार पादों से युक्त है। भारतीय सनातन धर्म-दर्शन के ये निगमागम ही मूल आधार हैं। सभी सनातन धर्मावलम्बी निगमागमोक्त धर्माचरण से ही परम पुरुषार्थ को पा रहे हैं।

निगम और आगम भगवान् शिव से ही प्रादूर्भूत हैं, अत एव परस्पर विरुद्धार्थक नहीं हैं। श्री नीलकण्ठ शिवाचार्य जी ने अपने क्रियासार ग्रन्थ के प्रथमोपदेश में इस विषय का इस प्रकार समर्थन किया है—

परस्पराविरुद्धार्थाः शिवोक्ता निगमागमाः।
अल्पबुद्धिभिरन्योन्यं विरोधः परिकल्प्यते ।।

उपर्युक्त अट्ठाईस शैवागमों के पूर्व भाग में शैव धर्माचरण और उत्तर भाग में वीरशैव धर्माचरण प्रतिपादित है, यह बात सिद्धान्तशिखामणि के निम्न वचन से सिद्ध होती है —

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्॥ (सि० शि० ५।१४)

भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश के अनुसार श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया है। इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत है। इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त पंचाचार्यों द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः श्री जगद्गुरु पंचाचार्यों को वीरशैव धर्म के संस्थापकों के रूप में माना गया है।

सुविपुल वह प्राचीन साहित्य दुर्लभ होता जा रहा है। अभी हमारे संस्थान के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम नामक चार आगमों का प्रकाशन हिन्दी भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस कार्य के लिये हमारे शोध प्रतिष्ठान के आगम-तन्त्रशास्त्र के विशेषज्ञ निदेशक, राष्ट्रियपण्डित माननीय श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी का उल्लेखनीय योगदान रहा है। आपने उक्त चार आगमों में से प्रथम तीन का संपादन, टिप्पणी आदि के साथ स्वयं किया है और कारणागम का संपादन प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय ने किया है। इन दोनों विद्वानों के सहयोग से, प्रतिष्ठान की परामर्शदात्री समिति के सौजन्य से और यहाँ अध्ययनरत प्रबुद्ध छात्रों के प्रयत्न से यह प्रकाशन-कार्य सुचारु ढंग से सम्पन्न हुआ है।

श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी के आविर्भाव-काल महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर इन चारों आगमों को हम शिवार्पित कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि इनके प्रकाशन से जिज्ञासु विद्वानों तथा शोध-छात्रों को समुचित लाभ होगा। इस कार्य के सम्पादन में तत्परता से लगे हुए सभी महानुभावों पर श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जी का, काशी विश्वेश्वर और माता अन्नपूर्णा का निरन्तर कृपाशीर्वाद रहे।

महाशिवरात्रि, २०५० वि.।

इत्याशिषः

प्रकाशकीय वक्तव्य

शिवोपासना की पद्धति हमारे भारतवर्ष में सबसे प्राचीन एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। ऋक्, यजुः और अथर्व वेदों में शिव के ईश, ईश्वर, रुद्र, शितिकण्ठ, सर्वज्ञ, कपर्दी आदि अनेक नाम पाये जाते हैं। ऋग्वेद के ६०-७० सूक्तों में शिव के नाम, प्रभाव और स्वरूप आदि का वर्णन है। यजुर्वेद में क्रोधित शिव को शान्त करने के लिये शतरुद्र का स्वतन्त्र विधान किया गया है। इस वेद का सोलहवाँ अध्याय तो रुद्रमहिमा का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।

"नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च" (यजुर्वेद १६।४१)।

इस मन्त्र में शिव की परम पावन महिमा का सम्पूर्ण रस भरा हुआ है। अथर्ववेद में इनको सहस्रचक्षु, तिग्मायुध और विद्युच्छक्ति आदि बताया गया है।

वैदिक साहित्य की तरह तन्त्रसाहित्य, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थों में, आरण्यकों में और स्मृतियों में भी शिव की उपासना वर्णित है। तन्त्रों की रचना ही उमा-महेश्वर संवाद पर है। तन्त्रों के द्वारा भगवान् शंकर ने अपने महत्त्व को लेकर अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया है। सम्पूर्ण तन्त्रसाहित्य शिवस्वरूप, शिवमहिमा, शिवोपासना, लिंगार्चनपद्धति, लिंगपूजा के विधान से भरा हुआ है।

कामिक आदि अट्ठाईस आगम शैवागम कहलाते हैं। इन आगमों का प्रचार एवं प्रसार कम होने से प्रत्येक धार्मिक जिज्ञासु उनका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। उन सभी जिज्ञासुओं के लिये उनका हिन्दी भाषानुवाद करके जब उनको प्रस्तुत किया जायगा, तब शैवागमों का महत्त्व क्या है? यह पता चलेगा। सरल एवं सुलभ हिन्दी भाषा में शैवागमों का न होना खेद की बात है। इस कमी को पूर्ण करने के लिये हमारे परमपूज्य श्रद्धेय श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी, जंगमवाड़ी मठ के बहु प्रयास से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम इन चार आगमों को अपने मठ के शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा हिन्दी भाषानुवाद के साथ प्रकाशित करवाया जा रहा है। उनके आदेश को शिरोधार्य करते हुए अभी हम इन चार आगमों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

महास्वामी जी के आदेशानुसार शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगम-तन्त्रशास्त्र के विद्वान् राष्ट्रियपण्डित श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी जी ने इन आगमों में से प्रथम

रामचन्द्र पाण्डेय ने कारणागम का सरल हिन्दी भाषानुवाद, आवश्यक टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ सम्पादन किया है। अतः आप लोगो को मैं सर्वप्रथम धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

उपर्युक्त चारों शैवागम सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के वेदान्त विभागान्तर्गत शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त की आचार्य परीक्षा में १९८४ ई० से पाठ्यग्रन्थों के रूप में स्वीकृत हैं। इस शुभ कार्य के लिये वेदान्त विभागाध्यक्ष प्रो० देवस्वरूप मिश्र महोदय जी प्रसंशा के पात्र हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में मठ के काशी वीरशैव विद्वत्संघ के कार्यदर्शी श्री ष० ब्र० मरुलसिद्ध शिवाचार्य जी, तोण्टदार्य देव, विश्वनाथ देव, सिद्धराम देव, शिवयोगी स्वामी मैसाळ, श्री महादेव शिवाचार्य जी, श्री विरूपाक्ष शिवाचार्य, सिद्धराम देव सुरकोड, राचोटी देव, मलेयोगीश्वर देव, चिदानन्द हिरेमठ (कसगी) तथा विशेष रूप में डॉ० जी० सी० केण्डदमठ, सं. सं. वि. वि. के डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय आदि सदस्यों ने प्रेस कापी, विषयसूची, श्लोकार्धानुक्रमणी तथा अन्य परिशिष्टों को तैयार करने में हमें अपना अमूल्य समय देकर सहयोग किया है, अतः वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमारी प्रार्थना के अनुसार विशेषतः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति एवं शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के संरक्षक प्रो० वी० वेंकटाचलम् महोदय जी का भी समय-समय पर बहुमूल्य परामर्श मिलता रहा है। अतः मैं उनके प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत आगम ग्रन्थों का लोकार्पण कार्य प्रो० करुणापति त्रिपाठी जी एवं प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी ने अपने करकमलों से करके महनीय उपकार किया है, एतदर्थ मठ उनके प्रति भी आभार प्रदर्शित करना अपना कर्तव्य समझता है।

इन ग्रन्थों के मुद्रण कार्य को समय से पूरा करने में उल्लेखनीय सहयोग के लिये जौहरी प्रासेस एवं प्रिंटिंग प्रेस एवं खण्डेलवाल प्रेस के मालिकों को तथा कर्मचारीगण को भी धन्यवाद प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहायता देने वाले सभी जनों के प्रति हमारी कृतज्ञता समर्पित है।

सभी जिज्ञासु पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे अवश्य इन ग्रन्थों को एक बार मनोयोगपूर्वक पढ़ें एवं अधिकाधिक लाभ उठावें।

१०-३-९४ महाशिवरात्रि।
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी।

विनीत
डॉ० महेश्वरदेव, प्रबन्धक
जंगमवाड़ी मठ (वाराणसी)

प्रस्तावना

संवत् २०५० वि. के अपने श्रावणमासीय शिवपूजा अनुष्ठान के शुभ अवसर पर काशी के जंगमवाड़ी मठ के श्री १००८ जगद्गुरु डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी ने श्री जगद्गुरु विश्वाराध्य जनकल्याण प्रतिष्ठान के तत्त्वावधान में शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की स्थापना का शुभ संकल्प लिया था और बाद में पुरुषोत्तम मास के निमित्त प्रयाग में आयोजित शिवपूजा अनुष्ठान के अवसर पर दि० २०-८-९३ को उक्त दोनों प्रतिष्ठानों की सविधि स्थापना के साथ यह शिव संकल्प कार्य रूप में परिणत हो गया। वीरशैव सिद्धान्त की अभिवृद्धि में सहायक शैवागम की पाशुपत, सिद्धान्तशैव और प्रत्यभिज्ञा शाखाओं के साथ प्रधानतः वीरशैव सिद्धान्त के आधारभूत आगमों का और उनकी पृष्ठभूमि में निर्मित शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रकाशन करना एवं उन पर शोध सामग्री प्रस्तुत करना शैवभारती शोध प्रतिष्ठान का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इसके उद्देश्य और कार्यक्रम का विस्तृत विवरण अलग से प्रकाशित किया जायगा। अब तक प्रथम और द्वितीय पुष्प के रूप में यहाँ से चन्द्रज्ञानागम और सूक्ष्मागम का प्रकाशन हो चुका है। आज हमें शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की ओर से भाषानुवाद, टिप्पणी और परिशिष्टों के साथ तृतीय पुष्प के रूप में मकुटागम को विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है।

इस ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित चन्द्रज्ञानागम की प्रस्तावना में सप्रमाण यह बताया गया है कि 'सिद्धान्त' नाम से प्रसिद्ध कामिक आदि २८ आगमों के उत्तर भाग में वीरशैव मत का सविशेष प्रतिपादन हुआ है। भगवान् शिव के द्वारा शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित उस वीरशैव सिद्धान्त को भगवान् शिव के ही आदेश से श्री रेणुक, श्री दारुक, श्री घण्टाकर्ण, श्री धेनुकर्ण और श्री विश्वकर्ण नामक पाँच आचार्यों ने भूलोक में प्रतिष्ठापित कर अनेक महर्षियों को इसका उपदेश किया और इन आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट वह सिद्धान्त सिद्धान्तशिखामणि आदि ग्रन्थों में संगृहीत हुआ । इस प्रकार शिवोक्त वीरशैव सिद्धान्त उपर्युक्त पंचाचार्यों के द्वारा भूलोक में प्रतिष्ठापित हुआ, अतः ये श्री जगद्गुरु पंचाचार्य वीरशैव धर्म के संस्थापक के रूप में मान्य हैं।

चन्द्रज्ञानागम की उक्त प्रस्तावना में सिद्धान्त शैवागमों (१० शिवागम और १८ रुद्रागम) का परिचय देते हुए इनकी नामावली दी गई है। उसके अनुसार मकुटागम का रुद्रागमों में सातवाँ स्थान है। प्रस्तुत अंश उसका उत्तर भाग है। इसका क्रियापाद पाँच पटल का और चर्यापाद दस पटल का है। यहाँ भगवान् रुद्र प्रश्नकर्ता हैं और परमशिव उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। कैलास शिखर पर निवास करने वाले भगवान् रुद्र परमशिव को प्रणाम कर कहते हैं कि हे कृपासिन्धो! आपने [1]अनायास निगम और आगम की संहिताओं का उपदेश किया है। अब मैं आपसे सभी आगमों में मकुटायमान मकुटसंहिता के [2]उत्तर भाग को सुनना चाहता हूँ, जिसमें कि शाम्भवव्रत का पालन करने वालों के लिये साक्षात् मोक्ष को देने वाले विशिष्ट धर्मों का उपदेश किया गया है। कृपा कर आप मुझे उसे सुनाइये। इस पर परशिव कहते हैं कि [3]मकुटोत्तर (मकुटागम के उत्तर भाग) में वर्णित शांभवव्रत का माहात्म्य, शिवभक्तों के द्वारा पालनीय आह्निक, अर्चा (पूजा) के विशेष प्रकार, पूजा के उपकरण, साधन और शिवभक्तों की अन्त्येष्टि विधि--इन सबको मैं संक्षेप में तुमको सुनाता हूँ।

संक्षेप में इतना बता देने के बाद परमशिव क्रियापाद के प्रथम पटल में कहते हैं कि जो व्यक्ति संसार-सागर से मुक्ति की कामना रखता है, उसे वेदों और आगमों के उत्तर भाग में विहित शाम्भवव्रत[4] का आचरण करना चाहिये। शाम्भवव्रत को यहाँ महागुह्य शिरोव्रत कहा गया है। गुरु की कृपा से स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर गत

---

१. यहाँ (१।१।५) निगमों और आगमों की संहिताओं को भगवान् का निःश्वास माना गया है। श्वास-प्रश्वास को लेने में जैसे मनुष्य को कोई आयास (मेहनत) नहीं होता, उसी तरह से भगवान् के निश्वास के साथ इन सबका प्रादुर्भाव माना जाता है। इस सिद्धान्त को प्रायः सभी महनीय आचार्यों ने एक स्वर से मान्यता दी है।

२. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद (१०।१२-१३) ने भी पूर्वभाग और पूर्वकाण्ड शब्दों से सिद्धान्त शैवागमों का और उत्तरकाण्ड (१०।३२) शब्द से वीरशैव आगमों का ग्रहण किया है।

३. तन्त्रालोक (३०।८१) में निश्वाससंहिता के साथ तथा स्वतन्त्र रूप से (३०।८२) भी मुकुटोत्तर उद्धृत है। तन्त्रालोक में पदमन्त्रों के उपदेश के प्रसंग में यह ग्रन्थ स्मृत है। इस तरह का कोई प्रकरण प्रस्तुत ग्रन्थ में नहीं है। सिद्धान्त शैवागमों के उपागमों की नामावली में यह नाम मिलता है। अतः प्रस्तुत आगम उससे भिन्न ही होना चाहिये।

४. शिवदीक्षाग्रहण, भस्म-रुद्राक्ष धारण, षडक्षर अथवा पंचाक्षर मन्त्रजप, इष्टलिंग पूजन आदि इन आगमों में प्रतिपादित समस्त कार्यकलाप का शाम्भवव्रत में समावेश माना जाता है। इसकी परिभाषा चन्द्रज्ञानागम (१।४७-४९) में देखनी चाहिये।

कार्म, मायीय और आणव मल का क्षय कर देने वाली वेधा, मनु और क्रिया नामक त्रिविध[५] दीक्षा से सम्पन्न व्यक्ति कर्मसाम्य[६] की स्थिति में पहुँच कर पुनः जन्मग्रहण नहीं करता। इस प्रकार यहाँ मोक्ष और शाम्भवव्रत का साध्यसाधनभाव संबन्ध बताया गया है। कहा गया है कि [७]कर्मयोग में लगा हुआ व्यक्ति भी यदि शांभवव्रत का आचरण नहीं करता तो वह निरा पशु है। इस वचन में अर्थवाद की कल्पना करने वाला व्यक्ति नाना प्रकार की यातनाएँ भोगता रहता है।

इस प्रकार प्रथम पटल में शाम्भवव्रत की महिमा को बता कर शिवभक्तों के द्वारा अनुष्ठेय आह्निक[८] (दिनचर्या) विषयक रुद्र के प्रश्न के उत्तर में परमशिव पूरे द्वितीय पटल में इसी विषय का विस्तार से वर्णन करते हैं। प्रातःकृत्य, शौचविधि, दन्तधावन,

---

५. सिद्धान्तशिखामणि में दीक्षा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—
दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः ॥ (६।११)
यहीं आगे (६।१२-२१) त्रिविध दीक्षा का स्वरूप भी प्रतिपादित है। त्रिविधा दीक्षा में से प्रत्येक के सात-सात भेद होने से यह दीक्षा २१ प्रकार की हो जाती है। कारणागम (१।६९-११७) में इनका विवरण देखना चाहिये। तन्त्रशास्त्र में दीक्षा व अभिषेक का सर्वाधिक महत्त्व है। इस विषय को समझने के लिये श्रद्धेय श्री श्री गोपीनाथ कविराज के ग्रन्थ "भारतीय संस्कृति और साधना" के प्रथम भाग में प्रकाशित "दीक्षारहस्य" (पृ० २६५-३०१) तथा "तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि" में प्रकाशित दीक्षा संबन्धी दो निबन्ध (पृ० २७-३५, ३६-४१) देखिये। लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग (पृ० १५४-१६२) में दीक्षा संबन्धी अनेक ग्रन्थों को उद्धृत किया गया है।

६. कर्मसाम्य का संक्षिप्त स्वरूप मूल ग्रन्थ की टिप्पणी (पृ० ३) में दे दिया गया है। कर्मसाम्य और शक्तिपात के स्वरूप की विशेष जानकारी के लिये लुप्तागमसंग्रह, द्वितीय भाग का उपोद्घात (पृ० १५५-१५८) और वहाँ की टिप्पणियाँ देखनी चाहिये।

७. "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः" (२।१) पातंजल योगसूत्र में प्रतिपादित यह क्रियामार्ग ही कर्मयोग के नाम से यहाँ अभिहित है। निष्काम कर्म की भी मोक्षसाधनता शास्त्रों में चर्चित है, किन्तु वीरशैव मत ज्ञानकर्मसमुच्चय वाद का प्रतिपादक है। कर्म और ज्ञान दोनों का यहाँ समप्राधान्य माना गया है। विशेष विवरण के लिये देखिये— सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा (पृ० ३०५-३१०), चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद ११वाँ पटल।

८. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद के ११ वें पटल में भी वीरशैवों की आह्निक विधि का निरूपण मिलता है। कारणागम तृतीय पटल तथा शिवपुराण विद्येश्वर संहिता भी देखिये।

पंचांग स्नान[९],भस्मस्नान, त्रिपुण्ड्र-धारण आदि का वर्णन कर यहाँ त्रिपुण्ड्र-धारण के[१०] ३२ स्थानों का उल्लेख किया गया है। आगे [११]रुद्राक्ष-धारण की विधि को बता कर सूर्य के लिये अर्घ्यदान और गायत्री जप का विधान बताकर शिव के घोर स्वरूप अग्नि देवता (शिवाग्नि) की आराधना बताई गई है। अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम, उनके स्थान, विवाह आदि में तथा शान्ति आदि कर्मों में उनका उपयोग, शिवाग्नि का ध्यान बताकर यहाँ उसमें आहुति[१२] देने का विधान वर्णित है। अग्नि की सात जिह्वाओं का और उनमें संपाद्य कर्मों का इस प्रकार का विवरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। यह प्रकरण इस आगम का विशेष अवधेय स्थल है। आगे गुरुशरणागति की प्रक्रिया को बताकर संक्षेप में दिवस के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग में संपादनीय कृत्यों की चर्चा कर, शिवतीर्थ में मध्याह्न स्नान, सन्ध्योपासन [१३]पंच महायज्ञ का अनुष्ठान बता कर, माध्याह्निकी पूजा के महती, गुर्वी और लध्वी नामक त्रिविध भेदों का और [१४]अवसरा पूजा का उल्लेख किया गया है। इष्टलिंगपूजन, अतिथिपूजन, प्रसादग्रहण, अर्थार्जन आदि का संक्षिप्त उल्लेख कर आगे सायंकालीन सन्ध्या, बलि-वैश्वदेव, अर्धरात्रिपूजा, अतिथिपूजा और शिवध्यानपूर्वक रात्रिशयन के क्रम को बताते हुए इस आह्निक प्रकरण को समाप्त किया गया है।

तृतीय पटल के प्रारंभ में भगवान् रुद्र द्वितीय पटल में सूचित पूजा के विशेष प्रकारों

---

९. स्नान के पंचांगों में संकल्प, सूक्त पाठ, मार्जन, अघमर्षण और तर्पण का परिगणन किया जाता है (१।२।१०)।

१०. त्रिपुण्ड्रधारण के जिन ३२ स्थानों का यहाँ परिगणन किया गया है, वे ही स्थान चन्द्रज्ञानागम (१।११।१३-१५) में भी प्रदर्शित हैं। इनके अतिरिक्त चन्द्रज्ञानागम (१।६।४३-५७) में सोलह, आठ और पाँच वैकल्पिक स्थानों का भी वर्णन मिलता है और यह पूरा प्रकरण शिवपुराण की प्रथम विद्येश्वर संहिता (२४।९७-११२) में भी देखा जा सकता है।

११. सिद्धान्तशिखामणि (७।५४-५८), चन्द्रज्ञानागम (१।७ पटल) आदि में यह विषय देखा जा सकता है। शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता के २५ वें अध्याय में विस्तार से रुद्राक्ष की महिमा का वर्णन है।

१२. इस प्रसंग में चन्द्रज्ञानागम (१।११।४७-५७) का अग्नि संबन्धी प्रकरण भी देखने योग्य है। वहाँ अग्नि के विभिन्न अंगों में आहुति दान का फल बताया गया है।

१३. मूल ग्रन्थ के पृष्ठ १२ की १२ वीं टिप्पणी देखिये।

१४. अवसरा पद का अर्थ और इस नाम की पूजा का विशेष विवरण कारणागम के चतुर्थ पटल में देखिये।

को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं और उत्तर में परशिव पूजा के महती, गुर्वी, लघ्वी और अवसरा नामक[१५] भेदों की संक्षिप्त चर्चा कर उनके लिये पद्म, नवपद्म, भद्र और तत्त्व नामक मण्डलों[१६] का विधान करते हैं। यहाँ इसी प्रसंग में विभिन्न पूजाओं के लिये विभिन्न प्रकार की वर्तिकाओं (बत्तियों) का, दीपकों का, जपसंख्या का, नीराजन (आरती) का और नैवेद्य का विधान बताया गया है। यहाँ इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि बिना दीप जलाये पूजा नहीं करनी चाहिये और रंगवल्ली तथा दीपक का सर्वप्रथम गन्ध (चन्दन), अक्षत आदि से पूजन करना चाहिये। महानैवेद्य और अवसरनैवेद्य का लक्षण भी अन्त में यहाँ बताया गया है।

चतुर्थ पटल में पूजा के उपयोगी साधनों का विस्तार से वर्णन है। भगवान् रुद्र की जिज्ञासा पर परशिव सर्वप्रथम अभिषेक के लिये पंचामृत और शुद्ध जल का विधान करते हैं। शुद्ध जल में मिलाने के लिये यहाँ पाँच, तीन अथवा दो सुगन्धि द्रव्यों का उल्लेख कर पूजा के [१७]अन्य साधनों—चन्दन (गन्ध), पुष्प, पत्र, धूप, दीप आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। [१८]पुष्पों का उल्लेख करते समय यहाँ शिवपूजा के लिये प्रशस्त पुष्पों का, सात्त्विक, राजस और तामस पुष्पों का, कालभेद के अनुसार प्रशस्त पुष्पों का, वर्ज्य और ग्राह्य पुष्पों का विस्तार से विवरण दिया गया है। सौवर्ण पत्र-पुष्पों में और विल्वपत्र में पर्युषितता (बासीपन) दोष नहीं लगता, अतः पूजा में इनके उपयोग को विशेष महत्त्व दिया गया है। यहाँ धूप के दशांग, यक्षकर्दम, प्राजापत्य, विजय, शीतारि, कर्पूरकल्याण, अमृत और सुगन्धि नामक भेदों का वर्णन कर गुग्गुलु आदि की धूप की विशेष महिमा बताई गई है। दीपक के भी उत्तम, मध्यम और अधम भेदों को बता कर दीपक के लिये अग्राह्य तैलों का उल्लेख किया गया है। यहाँ पुनः स्मरण दिलाया गया है कि बिना दीपक को जलाये कोई भी शुभ कर्म, दैवकर्म और पितृकर्म नहीं करना चाहिये। आगे पंचसूत्र लिंग[१९] का लक्षण विस्तार से समझा कर

---

१५. पूजा के इन चतुर्विध भेदों का विशेष विवरण कारणागम के ४-७ पटलों में देखा जा सकता है। इनकी सामान्य चर्चा चन्द्रज्ञानागम (१।११।६५) में भी मिलती है।

१६. इन मण्डलों की रचना का प्रकार कारणागम (४।१७-२६) में वर्णित है।

१७. इष्टलिंग की अष्टोपचार और पंचोपचार पूजा का विधान सूक्ष्मागम (६।४१-५१) में देखिये।

१८. पुष्प संबन्धी यह प्रकरण कारणागम (४-६ पटल) में भी देखा जा सकता है।

१९. पंचसूत्रलिंग का लक्षण यहाँ (४।४५-४९) वर्णित है। यह इस आगम की विशेषता है। इसकी विधि को समझने के लिये हिन्दी अनुवाद और वहाँ की टिप्पणी में उद्धृत क्रियासार के स्थल को भी देखना चाहिये।

इष्टलिंग की पूजा का विधान बताया गया गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि गुरुप्रदत्त इष्टलिंग में इन लक्षणों की परीक्षा आवश्यक नहीं है। अन्त में बताया गया है कि भक्तिभाव से की गई पूजा ही सफल होती है।

पंचम पटल में भगवान् रुद्र शंका उठाते हैं कि शिव तो सर्वत्र विद्यमान हैं, फिर उनका आवाहन आदि कैसे किया जा सकता है? नैवेद्य आपके किस मुख में दिया जायगा? आपके नैवेद्य को कुछ लोग ग्राह्य और अन्य अग्राह्य मानते हैं। यह नैवेद्य किनके लिये ग्राह्य है, किनके लिये नहीं है? ये सब बातें आप मुझे समझाइये। उत्तर में परशिव आवाहन, संस्थापन, संनिधान, संनिरोधन, अवगुण्ठन, [२०]सकलीकरण और अमृतीकरण की प्रक्रिया को समझाते हैं। इष्टदेवता कहाँ-कहाँ किस रूप में साधक के संमुख रहती है, इसकी प्रक्रिया को भी यहाँ संक्षेप में बताया गया है। शिव के पाँच मुखों की पूजा का और इनमें [२१]आचार लिंग आदि की स्थिति का वर्णन कर प्रसाद-ग्रहण की पद्धति पर भी प्रकाश डाला गया है। अन्त में निर्माल्य विषयक प्रश्न का समाधान प्रस्तुत कर बताया गया है कि चण्ड को निवेदित प्रसाद अग्राह्य होता है। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि बिना इष्टलिंग को समर्पित किये शिवभक्त को कोई भी वस्तु अपने उपयोग में नहीं लानी चाहिये। निवेदित वस्तु को ग्रहण करने से ही शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। इसी के साथ यह पटल और इस आगम का यह क्रियापाद भी समाप्त होता है। इस प्रकार ग्रन्थ के प्रारंभ में उपस्थापित प्रश्नों में से

---

२०. सकलीकरण की प्रक्रिया का विशद स्वरूप सोमशम्भुपद्धति (कर्मकाण्डक्रमावली) के पाण्डिचेरी संस्करण के प्रथम भाग के प्रथम परिशिष्ट में देखिये। विभिन्न मन्त्रों के द्वारा साधक का अपने देह को विद्यामय बना लेना ही सकलीकरण विधि का मुख्य उद्देश्य है। सकलीकरण का संक्षिप्त लक्षण सोमशम्भुपद्धति में इस प्रकार दिया गया है—"हृदयादिकरान्तेषु कनिष्ठाद्यङ्गुलीषु च। हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ॥१४५॥"

२१. भगवान् शिव के पाँच मुख पंचब्रह्म के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह उनका मन्त्रमय शरीर है। इनके नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान हैं। यहाँ इनको क्रमशः आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, चरलिंग और प्रसादलिंग का प्रतिनिधि माना गया है। कालचक्र नामक प्रसिद्ध बौद्ध तन्त्र के टीकाकार आचार्य पुण्डरीक इनको क्रमशः वैरोचन, अमिताभ, रत्नसंभव, अमोघसिद्धि और अक्षोभ्य स्वरूप मानते हैं। उनकी उक्ति इस प्रकार है—"पञ्चवक्त्राणि पञ्चब्रह्मलक्षणानि।..... अत्र सद्यो वैरोचनः, वामदेवोऽमिताभः, अघोरो रत्नसंभवः, तत्पुरुषोऽमोघसिद्धिः, ईशानोऽक्षोभ्यः" (४।७०, पृ० १८६)।

अन्त्येष्टि को छोड़कर अन्य सभी प्रश्नों का समाधान इस क्रियापाद में कर दिया गया है। आगे पूरे चर्यापाद में अन्त्येष्टि विधि का ही विस्तार से निरूपण हुआ है।

चर्यापाद के प्रथम पटल के प्रारंभ में कैलाशवासी महेश्वर (रुद्र) महाकारुणिकोत्तम, [२२]पचीस मुख और पचास भुजा से सुशोभित, पंचब्रह्ममय, पंचकृत्य-परायण परशिव को प्रणाम कर प्रश्न करते हैं कि दिव्य आगमों के और निगमों के अन्तिम भाग में आपने शीघ्र मुक्ति को देने वाले शाम्भवव्रत का उपदेश किया है। जो व्यक्ति इस व्रत का अनुष्ठान करते हैं, उनकी अवसान विधि (अन्त्येष्टि) कैसे की जाती है, यह आप मुझे बताइये। इस प्रश्न का समाधान करते हुए परशिव कहते हैं कि ऐसे शिवभक्त के लिये मैंने शिवमेध विधि का विधान बताया है। शिवमेध पद की व्युत्पत्ति बताते हुए यहाँ कहा गया है कि इसी विधि को श्रुति में पितृमेध[२३] कहा जाता है। शाम्भव-व्रत का अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति भले ही भक्ति और ज्ञान से सम्पन्न न हो, इस समाधि-संस्कार से संस्कृत होने पर वह अवश्य शिवपद को प्राप्त करता है। शिवभक्त का दहन-संस्कार यहाँ निषिद्ध माना गया है। शिवभक्त को कभी प्रेतपद की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये प्रेतभाव की निवृत्ति के लिये किये जाने वाले अपसव्य आदि का विधान भी यहाँ निषिद्ध है। शिवभक्त को तो केवल समाधि-संस्कार से मुक्ति मिल जाती है। आगे के पटलों में इसी की प्रक्रिया बताई गई है।

द्वितीय पटल में रुद्र वर्तमान शरीर को छोड कर जाने वाले शिवभक्त को क्या करना चाहिये, इसके विषय में प्रश्न करते हैं और प्रश्न का समाधान करते हुए परशिव कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को शिव में चित्त को नियोजित कर, भस्म द्वारा आग्नेय स्नान कर, कुशा के आसन पर बैठ जाना चाहिये और भस्म-रुद्राक्ष धारण कर मृत्युसूचक[२४] निमित्तों से शीघ्र होने वाली मृत्यु का ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा में वैदिक

---

२२. भगवान् शिव का इस प्रकार का ध्यान अभी तक अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिला।

२३. चन्द्रज्ञानागम का चर्यापाद (१।७) तथा उस स्थल पर दी गई टिप्पणी का भी अवलोकन कीजिये।

२४. शिवपुराण की पाँचवीं उमा संहिता के २५-२८ अध्यायों में मृत्युकाल का निमित्तों से ज्ञान, कालवंचन, छायापुरुषलक्षण जैसे विषय विस्तार से वर्णित हैं। मृत्यु का काल और कालवंचन की प्रक्रिया सभी प्रकार की आगमतन्त्र की शाखाओं, पुराणों और योगशास्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध है। स्कन्दपुराण की सूतसंहिता (४।१।४६ अ०) और "धर्मशास्त्र का इतिहास" (हिन्दी संस्करण, भा० ३, पृ० ११११-१११२) भी देखिये।

मन्त्रों से अग्नि को समारोपित कर लेना चाहिये। किसी शिवभक्त को मृत्युकाल का ज्ञान न हो पावे, तो उसके पुत्र को अपने पिता का यह संस्कार करना चाहिये और पिता की आत्मा में समारोपित इस अग्नि के शमन हेतु षडध्वशुद्धिपूर्वक जलहोम करना चाहिये। इस अवसर पर दस प्रकार के दान का भी विधान है, जिनमें धेनु, सुवर्ण और शिवलिंग का दान प्रमुख है। इसके बाद लिंगांगसाहित्य के लिये स्थूलदेह और सूक्ष्मदेह में तत्त्वों के विलापन की विधि को सम्पन्न कर सर्वांगलिंगसाहित्य की भावना के लिये लिंग और अंग की विलापन-प्रक्रिया पूरी की जाती है। इस प्रक्रिया से उत्क्रान्त व्यक्ति सच्चिदानन्द लक्षण परम पद (परशिव) के साथ सामरस्य भाव को प्राप्त कर लेता है।

उत्क्रान्ति के समय दशविध दान के समान प्रायश्चित्त आदि का भी यथावसर अनुष्ठान किया जाता है। उसे तीर्थप्राशन कराया जाता है। शिवनाम, षडक्षर मन्त्र, उपनिषन्मन्त्र आदि का उसके दाहिने [२५]कान के पास उच्चारण किया जाता है और उत्क्रान्ति वेला में कपूर जलाया जाता है।

तृतीय पटल के प्रारंभ में रुद्र प्रश्न करते हैं कि प्राण की उत्क्रान्ति हो जाने के बाद शिवमेध विधि के कर्ता को क्या करना चाहिये। उत्तर में परशिव कहते हैं कि शिवगण, अर्थात् जंगमों से अनुमति प्राप्त कर सर्वप्रथम उसे यथाशक्ति दान करना चाहिये, [२६]ऊर्ध्वोच्छिष्ट आदि दोषों की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये, इष्टलिंग का संस्कार करना चाहिये। इतना सब कर लेने के बाद मृतदेह को विमान में रखकर मंगलध्वनि, मंगलवाद्य के साथ शिववाटिका में ले जाना चाहिये। चार विमानवाहकों के यहाँ महोक्ष, वृषभ, नन्दीश और नन्दिकेश्वर नाम दिये गये हैं। शिववाटिका जाते समय सबसे आगे मंगलवाद्य, तब समाधि के संभार, पूजाद्रव्य, संस्कारकर्ता, विमान और सबके अन्त में बन्धु-बान्धवों के चलने का क्रम बताया गया है। विमानवाहकों के निवीती होने और बन्धु-बान्धवों के उपनिषद् आदि का पाठ करते हुए चलने का यहाँ विशेष रूप से उल्लेख है।

चतुर्थ पटल में भूनिक्षेप विधि का वर्णन है। समाधि के लिये उपयुक्त स्थल का निर्देश कर यहाँ समाधि की रचना का प्रकार बताया गया है और तब उस समाधि में देह का

---

२५. चन्द्रज्ञानागम (२।२।२६) और मकुटागम (२।२।३६) में यहाँ कर्णमन्त्र शब्द प्रयुक्त है। मृत्यु के समय आज भी कान में इस तरह के मन्त्रों के सुनाने का रिवाज है।

२६. मूल ग्रन्थ की पृ० ४७ की टिप्पणी देखिये। अभी इसके लिये अधिक विवरण अपेक्षित है।

निक्षेप किस प्रकार किया जाय, इसकी पद्धति को बताने के साथ यहाँ उस समाधि स्थल को भस्म, लवण, मृत्तिका से भर देने का विधान है। यह सारी विधि वैदिक और आगमिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ सम्पन्न होती है। इसके बाद केश-श्मश्रु वपन, स्नान, नूतन वस्त्र धारण आदि का विधान है। केश-श्मश्रु वपन विषयक दो श्लोक यहाँ विशेष अवधेय हैं। अन्त में यहाँ ज्ञानमयी शिखा की महिमा गाई गई है।

पंचम पटल में रुद्र भगवान् भूनिक्षेप विधि के संपन्न हो जाने के बाद किये जाने वाले कृत्यों के विषय में प्रश्न करते हैं और परशिव इनके उत्तर में समाधि स्थल पर वृषभ के साथ लिंग के स्थापन का विधान बताते हैं। दशविध दान, समाधि स्थल पर क्षीरतर्पण और तीन बार जलांजलि दी जाती है। वासोदक[२७] दान यहाँ निषिद्ध है। आराधनकर्ता इसके बाद बन्धु-बान्धवों के साथ घर पर आकर दीपक जलाता है और [२८]नग्न-प्रच्छादन नामक आराधन करता है। समाधि पर स्थापित सवृषभ लिंग की दस दिन तक देखभाल करनी पड़ती है। दशाहपर्यन्त कृत्य से, एकोद्दिष्ट विधान से और तत्त्व संयोजन प्रक्रिया से पिता को दिव्य देह की, रुद्रत्व और महेशत्व की प्राप्ति होती है। आगे नवाराधन का विधान बताकर यह कहा गया है कि दशाह के बीच में [२९]दर्श तिथि या संक्रान्ति के आ जाने पर उसी दिन सारी आराधन प्रक्रिया पूरी कर देनी पड़ती है, किन्तु माता-पिता के आराधन में यह नियम लागू नहीं होता। आगे बताया गया है कि यदि पिता और पुत्र दोनों ही दीक्षित नहीं हैं, तो ऐसी स्थिति में उन्हें पहले परोक्ष दीक्षा से संस्कृत करना चाहिये। दसवें दिन केशवपन, क्षीरतर्पण, दशविध दान कर समाधि पर स्थापित सवृषभ लिंग का तीर्थजल में विसर्जन किया जाता है। तब तिल और आँवला मिश्रित जल से स्नान, गाणपत्य होम, आनन्द होम, पुण्याहवाचन कर आराधनकर्ता पवित्र हो गृहप्रवेश करता है।

दस दिन तक की आराधन विधि को सुनने के बाद षष्ठ पटल में श्रीरुद्र एकादशाह के विधान को जानना चाहते हैं और परशिव इसके उत्तर में रुद्रहोम, वृषोत्सर्ग, षोडश आराधन और पचास रुद्रों के आराधन का संक्षिप्त प्रकार बता कर षोडश आराधन

---

२७. पितृतर्पण आदि कर लेने के बाद जल से बाहर निकल कर श्राद्धकर्ता अपनी पहनी हुई धोती के कोने को निचोड़ कर उस जल को पितरों को समर्पित करता है। यही वासोदक दान है। वीरशैव मत के अनुसार यह क्रिया निषिद्ध है।

२८. मूल ग्रन्थ की पृ० ५४ की टिप्पणी में इसका विवरण देखिये।

२९. व्यवहार में आज भी इस विधि का पालन किया जाता है।

के दो प्रकारों का निर्देश करते हैं। तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया द्वादशाह में सम्पन्न की जाती है। एकोद्दिष्ट आराधन (श्राद्ध) का लक्षण बता कर यहाँ शैवाराधन में वर्जित विषयों की सूची दी गई है। ग्यारह माहेश्वरों के भोजन के विधान के साथ पचास रुद्रों का आराधन क्रम भी यहाँ वर्णित है और अन्त में पचास रुद्रों की नामावली दी गई है। इसी के साथ एकादशाह आराधन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

अब सप्तम पटल में श्रीरुद्र द्वादशाह के विधि-विधान को सुनने की इच्छा प्रकट करते हैं और परशिव उनकी इच्छा की पूर्ति करते हुए द्वादशाह के कृत्यों का निरूपण करते हैं। वे कहते हैं कि इस दिन तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया के अनुष्ठान से जीवभाव की निवृत्ति के साथ मृत व्यक्ति का चतुर्थ भाव भी निवृत्त हो जाता है और वह भ्रमरकीट न्यास से शिवैक्य को प्राप्त कर लेता है। द्वादशाह में सम्पन्न होने वाला सापिण्ड्य संस्कार यहाँ नहीं किया जाता। उसके स्थान पर तत्त्वसंयोजन किया जाता है। तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया के साथ यहाँ शशिनी[३०] आदि कलाओं के संयोजन का भी विधान बताया गया है। चतुर्थ भाव की निवृत्ति के लिये यहाँ पिता, पितामह और प्रपितामह-स्थानीय माहेश्वरों को पात्र प्रदान किया जाता है। इससे जीवस्वरूप पिता क्रमशः महेश, सदाशिव और शिव-स्वरूप में प्रविष्ट हो अन्ततः परशिव में लीन हो जाता है, उसकी अलग से कोई सत्ता नहीं रह जाती।

द्वादशाह पर्यन्त आराधन विधि को सुन लेने के बाद श्री रुद्र प्रकीर्ण विधि को, आराधन विधि से संबद्ध छूटी हुई बातों को सुनने की जिज्ञासा करते हैं। इसके उत्तर में परशिव कहते हैं कि पिता की मृत्यु के बाद सगे भाई के द्वारा आवश्यक कृत्यों के संपादित कर लिये जाने पर भी यदि ज्येष्ठ भ्राता इस बीच बाहर से आ जाता है, तो उसे समाधि-संस्कार को छोड़कर बाकी कृत्यों का पुनः अनुष्ठान करना चाहिये। विशेष स्थिति में तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया स्थगित रखी जाती है और नपुंसक आदि का तत्त्वसंयोजन नहीं किया जाता। पार्वणाराधन, पाकशेषभोजन, रात्रिश्राद्धविधान, उपराग (ग्रहण) आदि की स्थिति में पितृतर्पण आदि प्रकीर्णक विषयों का संक्षेप में उल्लेख कर यहाँ आराधन का लक्षण बताया गया है। आगे द्विविध श्राद्ध का और श्राद्ध

---

३०. शिव के पाँच मुखों से समुद्भूत ३८ कलाओं का निरूपण प्रायः सभी शैव तन्त्रों में मिलता है। लिंगधारणचन्द्रिका (पृ० २७१-२७७), वीरशैवदीक्षाविधि (पृ० ८३-८४), नेत्र-तन्त्र (२२।२६-३४), स्वच्छन्दतन्त्र (१।५३-५९) आदि ग्रन्थों को देखिये। यहाँ इन कलाओं के नामों में अन्तर मिलता है।

के अंगों का निरूपण कर शैव श्राद्ध में वर्जित और उपादेय द्रव्यों का उल्लेख कर पुनः यहाँ स्मरण दिलाया गया है कि शाम्भवव्रत का अनुष्ठान करने वालों का सापिण्ड्य श्राद्ध नहीं किया जाता। आगे त्रिविध आराधन का सविशेष निरूपण किया गया है और बताया गया है कि आराधन विधि में श्रेष्ठ माहेश्वर को ही निमन्त्रित करना चाहिये। बीच का रास्ता भी यहाँ बताया गया है और अन्त में वर्जनीय माहेश्वर का लक्षण निरूपित है।

नवम पटल में श्री रुद्र प्रत्याब्दिक आराधन (प्रतिवर्ष मृत्यु तिथि पर किया जाने वाला श्राद्ध) का विधान पूछते हैं और परशिव विस्तार से इस आराधन की विधि को बताते हैं। यहाँ बताया गया है कि अपसव्य, तिल, दर्भ, पिण्डदान, अग्निकर्म, विकिर और अर्घ्यपात्र ये सात वस्तुएँ शैवाराधन में वर्जित हैं। पिता महेश्वर, पितामह सदाशिव और प्रपितामह शिवस्वरूप माने जाते हैं। इस आराधन कर्म में निमन्त्रित माहेश्वरों के साथ दान, भोजन, पूजा आदि में किसी प्रकार की विषमता वर्जित है। पुष्प और अक्षत देकर निमन्त्रित माहेश्वरों की पूजा और प्रार्थना की जाती है और पितरों एवं देवताओं के पादपूजन के लिये दो मण्डलों की रचना की जाती है। निमन्त्रित माहेश्वरों का सत्कार कर विश्वदेवों और पितरों का आवाहन किया जाता है। माहेश्वरों को भोजन परोस कर उसमें मन्त्रोच्चार पूर्वक [३१]अंगुष्ठ का निवेश किया जाता है। स्वाहा, स्वधा, नमः, न मम इत्यादि शब्दों का यथावसर उच्चारण करते हुए देवताओं और पितरों को तृप्त किया जाता है। पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये आपोशान किया जाता है और तब माहेश्वरों को 'मधुव्वाता' इत्यादि मन्त्रों के उच्चारण के साथ भोजन करने की प्रार्थना की जाती है। उत्तरापोशन और करशुद्धि के बाद 'श्रद्धायां प्राणः' आदि मन्त्रों का पाठ कराते हुए उनसे आशीर्वाद लिया जाता है, उनसे क्षमाप्रार्थना की जाती है कि मैंने आप लोगों को कष्ट दिया। सभी प्रकार के आराधनों की मुख्य पद्धति यही है, केवल संकल्पवाक्य भिन्न हो जाता है। इतना सब बता देने के बाद यहाँ श्राद्ध में माता, पिता आदि के आराधन का क्रम भी निर्दिष्ट है। माहेश्वरों के न मिलने पर आराधन की सारी प्रक्रिया विष्टरों[३२] पर की जाती है और बाद में भोजन-सामग्री गाय को और दक्षिणा ब्राह्मणों को दे दी जाती है। पितरों की आराधना से क्या फल मिलता है और न करने पर वह किस प्रकार दोष का भागी होता है? यह बताने के साथ पटल समाप्त होता है।

---

३१. अंगुष्ठ-निवेशन की यह प्रक्रिया व्यवहार में आज भी प्रचलित है।
३२. मूल ग्रन्थ की पृ० ७८ की चौथी टिप्पणी देखिये।

चर्यापाद के अन्तिम दसवें पटल में श्री रुद्र अपने आशौच विषयक संशय को उपस्थित करते हैं कि शाम्भवव्रत के अनुष्ठान से शुद्ध शिवभक्तों को आशौच का स्पर्श कैसे हो सकता है? परशिव इस प्रश्न के लिये श्री रुद्र की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि यह सही है कि शिवभक्तों को आशौच का स्पर्श नहीं होना चाहिये, तो भी उनका सारा कार्यकलाप सांसारिक दशा में सांसारिक जीवों के साथ बना रहता है। अतः संपर्कजन्य दोषों की प्रवृत्ति उनमें आ ही जाती है। ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि सांसारिक सम्पर्क से दूर रहते हैं, अतः उनको यह आशौचजन्य दोष नहीं लगता। आगे २६ वें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख है। गृहस्थ के लिये भी इष्टलिंग-पूजन आदि में यह दोष बाधक नहीं माना गया है। आगे यहाँ द्विविध और चतुर्विध आशौच का निरूपण कर बन्धु-बान्धवों, माता-पिता, सहोदर आदि में आशौच काल की व्याप्ति पर तथा अजातदन्त बालक, मातुल आदि की मृत्यु पर प्राप्त आशौच काल पर विचार करते हुए कहा गया है कि अनेक आशौचों की एक साथ प्राप्ति होने पर उनकी एक साथ निवृत्ति हो जाती है। ऐसी स्थिति में मरणाशौच प्रधान माना जाता है। माता-पिता का मरणाशौच अन्य सभी आशौचों का बाधक माना गया है। विवाह, यज्ञ आदि के अवसर पर सद्यः शौच का भी विधान है। यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सन्ध्या और पूजा कभी नहीं छोड़ी जाती। त्रिकरण (मन, वचन, शरीर) शुद्धिपूर्वक बिना मन्त्रोच्चार के सन्ध्या और इष्टलिंग की पूजा नित्य अवश्य करनी चाहिये।

अन्त में ग्रन्थ का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि यहाँ शाम्भवव्रत का पालन करने वाले शिवभक्तों के द्वारा आचरणीय धर्मों का वर्णन किया गया है। यह मकुट नाम का धर्मशास्त्र सभी शास्त्रों में मुकुट की मणि के समान श्रेष्ठ है। यहाँ मकुटागम को धर्मशास्त्र कहा गया है। हम देखते हैं कि इस आगम के चर्यापाद में और विशेष कर चन्द्रज्ञानागम के चर्यापाद में प्रधान रूप से धर्मशास्त्र से संबद्ध विषयों का निरूपण हुआ है। चन्द्रज्ञानागम के इस पाद में दी गई टिप्पणियों में हम इन आगमों के धर्मशास्त्रीय स्वरूप का स्पष्ट दर्शन कर सकते हैं। इससे वीरशैव धर्म की निगमागम-मूलकता भी स्पष्ट हो जाती है। इतना अवश्य है कि शैव अन्त्येष्टि-संस्कार में कुछ वैदिक मान्यताओं को स्थगित कर दिया गया है। ऐसा क्यों किया गया, इस विषय को उक्त दोनों आगमों में स्पष्ट कर दिया गया है।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान की शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला में जिन चार आगमों का प्रकाशन हुआ है, उनमें सूक्ष्मागम और कारणागम में केवल क्रियापाद है और

चन्द्रज्ञानागम एवं मकुटागम में क्रिया और चर्यापाद दोनों हैं। इन दोनों आगमों के चर्यापाद के प्रतिपाद्य विषयों में ही नहीं, वचनों में भी बहुत समानता है। श्लोकार्धानुक्रमणी की सहायता से ऐसे अनेक वचनों को देखा जा सकता है। चन्द्रज्ञानागम में चर्यापाद के प्रथम पाँच पटलों में शिवमेध और शैवाराधन की जो विधि वर्णित है, वही मकुटागम के चर्यापाद के १-९ पटलों में कुछ अधिक विस्तार में दिखाई पड़ती है। चन्द्रज्ञानागम के बाकी के तीन पटलों में आशौच, प्रायश्चित्त और शुद्धि का विषय भी वर्णित है। इनमें प्राणिहिंसा के प्रायश्चित्त का और पात्र आदि की शुद्धि का विशेष रूप से विधान मिलता है। मकुटागम में इनमें से केवल आशौचों का ही उल्लेख है। ये सभी विषय धर्मशास्त्र से संबद्ध हैं।

महती, गुर्वी, लघ्वी और अवसरा पूजा का यहाँ सामान्य विवरण मिलता है। जब कि कारणागम के ४-८ पटलों में विस्तार से यह विषय प्रतिपादित है। आठ आवरणों और पाँच आचारों का चन्द्रज्ञानागम प्रतिपादित स्वरूप ही आज वीरशैव दर्शन में मान्य है और इस दर्शन का विशेष रूप से वर्णन सूक्ष्मागम में मिलता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि सूक्ष्मागम में प्रतिपादित दर्शन और लिंगतत्त्व के स्वरूप की कूर्मपुराण में और उसकी ईश्वरगीता में प्रतिपादित स्वरूप से बड़ी समानता है। इसी तरह से शिवपुराण की प्रथम विद्येश्वर संहिता में इन आगमों में वर्णित अनेक विषय, विशेष कर शिवाग्नि, भस्मस्नान, त्रिपुण्ड्र-रुद्राक्षधारण आदि प्रायः उसी रूप में मिल जाते हैं। अनेक स्थलों पर तो श्लोकानुपूर्वी भी मिलती है। टिप्पणियों में इन स्थलों का यथास्थान समावेश किया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरशैव धर्म के समान इसका दर्शन भी निगमागमपुराण-संमत है।

चन्द्रज्ञानागम और मकुटागम के अनेक वचन लुप्तागमसंग्रह के दोनों भागों में संगृहीत हैं। उन आगमों के उत्तर भाग में ये वचन न मिलें, यह स्वाभाविक है। वहाँ मुकुटोत्तर की भी एक [३३]पंक्ति संगृहीत है। वह भी यहाँ उपलब्ध नहीं होती।

मकुटागम के उन वचनों का आज की परिस्थिति में विशेष उपयोग है। आजकल के विभिन्न धर्मों के प्रचारक भारतीय संस्कृति और धर्म पर मिथ्या आरोप लगा कर उसको धूलिधूसरित कर देना चाहते हैं और वर्तमान राजनेतागण एवं बुद्धिजीवी वर्ग इस प्रचार से अभिभूत से हो गये हैं। इसी कारण से प्रजा पर भी इस दुष्ट प्रचार के बादल मंडराने

---

३३. "अलं द्विरिति सूक्ष्मं चेत्येवं श्रीमुकुटोत्तरे" (३०।८२)।

लगें, यह स्वाभाविक है। ब्राह्मणवाद, मनुवाद, वर्णाश्रमव्यवस्था जैसे शब्दों का उन अर्थों में प्रयोग होने लगा है, जिनको कि स्वयं भारतीय संस्कृति ने आज से कम से कम एक हजार वर्ष पहले अवश्य ही नकार दिया था। कौआ कान ले गया, सुन कर कान सही-सलामत हैं या नहीं, इसको देखे बिना हम कान की खोज में निकल पड़े हैं। इस दुष्प्रचार में कुछ प्रबुद्ध भारतीय सुधारवादियों का भी कम हाथ नहीं है, जिन्होंने कि धर्म, दर्शन और संस्कृति के क्षेत्र में हुई एक लम्बी विकासवादी परम्परा को नकार दिया है। मुकुट-संहिता के इन वचनों को आप देखिये—

शिवधर्मानुयायी[३४] च श्रद्दधानः शिवात्मकः ।
शिवे ज्ञाने गुरौ भक्तः प्रीतः सब्रह्मचारिषु ॥
अनसूयुर्दृष्टतत्त्वः संस्कृतश्च शिवाध्वरे ।
अन्त्यजातोऽपि हीनाङ्गः साधकः स च मोक्षभाक् ।
एभिर्गुणैर्वियुक्तात्मा ब्राह्मणोऽपि न मोक्षभाक् ॥
द्विजोऽपि मायी त्याज्यस्तु म्लेच्छो ग्राह्यो ह्यमायकः ।
स प्रियस्तु महेशस्य चतुर्वेदो न दाम्भिकः ।
शिवद्वेषी पापकर्मा शिवधर्मादिदूषकः ॥
ब्राह्मणेन कृतं पापं शूद्रेण सुकृतं कृतम् ।
किं तत्र कारणं जातिर्धर्माधर्मेषु शस्यते ॥....

श्रीमौकुटे तथा चोक्तं शिवशास्त्रे स्थितोऽपि यः ।
प्रत्येति वैदिके भग्नघण्टावन्न स किञ्चन ॥....

ब्राह्मण्यं बीजशुद्ध्या स्यात् सा च स्त्रीषु व्यवस्थिता ।
तासां च चपलं चित्तं चाण्डालेष्वपि धावति ॥....

संविद्व्यापार एवैका युक्तिः सर्वत्र साधनी ।
भोगे वाऽप्यथवा मोक्षे तेनास्यामादृतो भवेत् ॥

---

३४. ये सभी वचन लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग (पृ० १४१) में स्थाननिर्देशपूर्वक संगृहीत हैं।

पाठकों की सुविधा के लिये इन श्लोकों का भाषानुवाद कर देना उचित होगा—

"शिवधर्म का अनुसरण करने वाला, उस पर श्रद्धा रखने वाला, शिवस्वरूप; शिव, शिवज्ञान और गुरु पर भक्ति रखने वाला, अपने सहपाठियों के साथ प्रेमभाव रखने वाला, असूया (डाह) से रहित, तत्त्व का साक्षात्कार करने वाला, शिवयज्ञ में दीक्षित, अन्त्य जाति का हीन अंग वाला साधक भी मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और इन गुणों से रहित ब्राह्मण भी मोक्ष का अधिकारी नहीं माना जाता। कपटी द्विज का भी त्याग कर देना चाहिये और साधुचरित्र म्लेच्छ भी संग्राह्य है, क्योंकि ऐसा म्लेच्छ भगवान् शिव को प्रिय है; चारों वेदों का जानने वाला, शिव के प्रति द्वेषभाव रखने वाला, पापी, शिवधर्म को दूषित करने वाला पाखंडी ब्राह्मण नहीं। देखने में आता है कि ब्राह्मण पाप कर्म में प्रवृत्त होता है और शूद्र भले काम करता है। ऐसी स्थिति में धर्म और अधर्म के प्रति जाति की क्या भूमिका हो सकती है?

मुकुटसंहिता में कहा गया है कि जो व्यक्ति शिवशास्त्र का अध्ययन कर लेने के बाद भी वैदिक विधि-विधानों में विश्वास करता है, उसकी स्थिति फूटे हुए घंटे के समान होती है, अर्थात् फूटे घंटे से जैसे कर्णमधुर ध्वनि नहीं निकल पाती, वैसी ही स्थिति उसकी हो जाती है।

ब्राह्मण की प्रतिष्ठा तो बीजशुद्धि पर निर्भर है और वह बीजशुद्धि स्त्रियों के अधीन है। देखने में आता है कि उनका चंचल चित्त कभी कभी चाण्डाल के प्रति भी दौड़ पड़ता है।

[३५]भोग हो अथवा मोक्ष, संवित् [३६]शक्ति का व्यापार ही सर्वत्र मार्गदर्शक बनता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह स्वानुभूति (स्वात्मसाक्षात्कार) पर विशेष जोर दे"।

इन वचनों को उद्धृत कर उत्तर (कश्मीर) के महान् शिवाचार्य अभिनवगुप्त ने और दक्षिण (चोलदेश) के महेश्वरानन्द ने समान रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं। इनसे भी पहले शिवदृष्टिकार सोमानन्द ने कालपादा संहिता को उद्धृत कर कहा है कि

३५. भोग और मोक्ष शब्दों का प्रयोग यहाँ दार्शनिकों के द्वारा प्रयुक्त अभ्युदय और निःश्रेयस के अर्थ में हुआ है।

३६. शाक्त आचार्यों ने संवित् शब्द को परा शक्ति का पर्यायवाची माना है, भट्ट प्रभाकर के समान ज्ञान के पर्यायवाची शब्द के रूप में नहीं। स्वात्मपरामर्श ही यहाँ संवित् शक्ति का मुख्य व्यापार माना गया है। विशेष जानकारी के लिये महार्थमंजरी का हमारा उपोदघात (पृ० २०-२१) देखिये।

श्वपचों को भी दीक्षा का अधिकार है। कश्मीर के [३७]स्वच्छन्दतन्त्र का कहना है कि शैव धर्म में दीक्षित हो जाने पर पूर्व जाति का स्मरण नहीं करना चाहिये। सूक्ष्मागम के परिशिष्ट भाग (पृ० १५४, १५६-१५७) में संगृहीत वचनों का भी यही अभिप्राय है। आगम और तन्त्रशास्त्र की इस विशेषता पर हमने लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग के उपोद्घात (पृ० २०३-२१७) में विस्तार से विचार किया है। आगम और तन्त्रशास्त्र में ही नहीं, [३८]पुराणों में भी इस तरह के विचार हमें उपलब्ध होते हैं।

महाभारत और सिद्धान्तशिखामणि के समान पुराणों में भी कृतान्तपंचक (सांख्य, योग, पांचरात्र, पाशुपत और वेद) का प्रामाण्य स्वीकृत है। आज भारतीय समाज की जिन समस्याओं को बढ़ा-चढ़ा कर परोसा जा रहा है, उनका समाधान यहाँ बहुत पहले खोज लिया गया था और पूरे भारत की सन्त-परम्परा उसी मार्ग का उद्घोष कर रही है। यह भी हमारी मूढता ही है कि इन सन्तों की वाणियों को हम स्वयंप्रसूत मान बैठे हैं और भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा से-रामायण – महाभारत - पुराण - आगम तन्त्रशास्त्र से, उनकी संबद्धता को भुला बैठे हैं। संस्कृत भाषा के प्रति फैलाये गये द्वेष की इसमें अहम् भूमिका है। आज अपने-अपने राज्य की भाषा का मोह उस अमृत स्रोत को सुखाने जा रहा है, जो कि इस दुनिया की सबसे प्राचीन, सबसे समृद्ध भाषा से प्रसूत होता रहा है और आज के कम्प्यूटर युग में भी जिसने अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर दी है।

आज वैदिक धर्म, स्मार्त धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के उस प्राचीन स्वरूप को तो जिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है, जिनमें विषमता प्रधान थी, किन्तु धर्म और दर्शन के क्षेत्र में वैचारिक संघर्षों के कारण जो परिवर्तन आये, आगम और तन्त्रशास्त्र ने भारतीय धर्मों और दर्शनों में समन्वय स्थापित करने का जो महनीय कार्य किया, उसको हम भुला बैठे हैं। हमने एक जगह लिखा है कि धर्मों और दर्शनों में समन्वय

---

३७. "ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्येऽथवा प्रिये। सर्वे ते शिवधर्माणः शिवधर्मे नियोजिताः।।.... प्रागूजात्युदीरणाद् देवि प्रायश्चित्ती भवेन्नरः" (४।५४०-५४६) तक का प्रकरण देखिये।

३८. "भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते। स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम्।। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः। पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया।।. (गरुडपुराण, १।२१९।९-१०)। भगवद्भक्ति के प्रसंग में इस तरह के वचन प्रायः सभी पुराणों में मिल जाते हैं।

स्थापित करने का प्रयत्न आगम-तन्त्रशास्त्र ने किया है और उसी में यह सामर्थ्य है कि अन्ततः वह आन्तर आध्यात्मिक दृष्टि और बाह्य भौतिक वाद में समन्वय स्थापित कर सकेगा।

तन्त्रशास्त्र की कुछ मान्यताएँ हमारे लिये समालोच्य हो सकती हैं, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम पूरे आगमशास्त्र और तन्त्रशास्त्र का तिरस्कार कर दें। आश्चर्य इस बात का है कि तन्त्रशास्त्र का जो हेय पक्ष है, उसीसे आज के योगी, स्वामी, ब्रह्मचारी नामधारी जीव ज्यादातर जुड़े हुए हैं और उनको सामान्य समाज में ही नहीं, भारतीय समृद्ध वर्ग, राजनेतागण और तथाकथित बुद्धिजीवियों के बीच भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है। आगमशास्त्र में ऐहिक और आमुष्मिक सामान्य सुख (अभ्युदय) के अर्थ में प्रयुक्त भोग शब्द को जिन्होंने संभोग के अर्थ में ला पटका है, उनको आज भगवान् से भी ऊँची जगह में पहुँचा दिया गया है। तन्त्रशास्त्र की कुछ रहस्यवादी मान्यताओं को तो शांकर सम्प्रदाय में भी स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु —"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥" (५।१८) गीता के इस श्लोक की व्याख्या करते समय वे तान्त्रिक दृष्टि को मान्यता देने में कतराते हैं। "अन्तः शाक्ताः" वाला श्लोक इनकी इस मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है और मिश्र शैवों के प्रसंग में चन्द्रज्ञानागम (१०।२२) में भी यह श्लोक मिलता है। इस विषय की चर्चा हम अपने विज्ञानभैरव के उपोद्घात में सन् १९७७ में ही कर चुके हैं। हमने यह भी लिखा है कि आज का भारतीय समाज वैदिक और तान्त्रिक दोनों धर्मों की विद्रूपताओं से ग्रस्त है और इनकी अच्छाइयों को भुला बैठा है। इस बीच यह हमारे लिये सौभाग्य का विषय है कि वीरशैव आगम इन दोनों प्रकारों के दोषों से अपने को मुक्त रख सका है। यह एक प्रकार का अत्याश्रमी धर्म है। साथ ही यहाँ निगमागम उपदिष्ट वर्णाश्रमधर्म के पालन में भी उतनी ही तत्परता दिखाई गई है। इस प्रसंग में चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद का ११वां पटल देखने योग्य है।

वर्णाश्रम व्यवस्था को नये सिरे से जिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" (४।१३) गीता का यह वाक्य इनका प्रधान संवल है। पर हम देखते हैं कि बड़े परिश्रम से कोई शास्त्री उपाधि प्राप्त करता है; दो, तीन या चार वेदों को पढ़ कर नये सिरे से द्विवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी बन पाता है, किन्तु उसके उत्तराधिकारी बिना परिश्रम के ही अनायास इन उपाधियों को हस्तगत कर लेते हैं। इनसे अपना मोह नहीं छुड़ा पाते। समाज में बुद्धिबल, बाहुबल, धनबल और श्रमशक्ति

की सदा प्रतिष्ठा रहेगी, किन्तु आज परिस्थिति पहले जैसी नहीं रह गई है। अकेली बुद्धि, अकेली शक्ति, अकेला धन, अकेला श्रम आज कुछ भी करने में असमर्थ है। सबको एक दूसरे की अपेक्षा है। यह सब होते हुए भी हम वर्णों की और जाति-उपजातियों की शृंखला को तोड़ नहीं सकेंगे।

एक काम हम कर सकते हैं कि इनमें घुसे हुए मिथ्याभिमान को तोड़ने का प्रयत्न करे। वह इस तरह से कि ऊँच-नीच की भावना को हम मिटा दें, बुद्धि को श्रेष्ठ और श्रम को कनिष्ठ मानना हम बन्द कर दें। धर्म, जाति, कुल, वंश, धन, विद्या और सांसारिक ऐश्वर्य के स्थान पर हम मनुष्य के चरित्र को वरीयता दें। आगम और तन्त्रशास्त्र ने इस कार्य को किया है। स्त्री-पुरुष और ब्राह्मण-चांडाल के भेद को उसने मिटाने का प्रयत्न किया है। बिना धर्म, विद्या, जाति और लिंग का विचार किये सन्तों को समाज में ऊँचा स्थान मिला है। मोहनदास करमचन्द गांधी को महात्मा और डॉ० भीमराव अंबेडकर को बाबासाहब बनाया है। भारतीय समाज ऊँच-नीच की अनन्त परम्पराओं से घिरा हुआ है। इस त्रास से उसको मुक्ति बिना रागद्वेष की भावना को जगाये भारतीय आगम-तन्त्रशास्त्र ही दिला सकता है।

बहुत वर्ष पहले हमने एक निबन्ध में भगवद्गीता के इस श्लोक को उद्धृत किया था–"यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके। तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥" (२।४६) संपादकीय कलम उसको सहन न कर सकी। भारत में दो तरह की दृष्टियों का साथ-साथ विकास हुआ है। एक दृष्टि है ब्रह्मसूत्र की, जिसमें वेद के सिवाय सबको नकार दिया गया है। दूसरी दृष्टि है भगवद्गीता, महाभारत, पुराण और सिद्धान्त-शिखामणि की, जिसमें सांख्य और योग में ही नहीं, उस समय प्रचलित सभी दृष्टियों में समन्वय स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। भगवत्पाद शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद की व्याख्या में पहली दृष्टि का समर्थन किया और जाने-अनजाने स्वामी दयानन्द[३९] ने भी उसी मार्ग का सहारा लिया, जब कि दक्षिण के शैव और वैष्णव सन्तों ने तथा उत्तर के सिद्धों, नाथों, सन्तों और गुरुओं ने दूसरी दृष्टि को श्रेयस्कर माना

---

३९. स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ब्रह्मसूत्र के तर्कपाद की पद्धति से ही जिन प्राचीन और अर्वाचीन सभी अवैदिक मतों का खण्डन किया गया है, उनमें से एक सिख मत भी है। हमें बताया गया था कि खालिस्तानी आन्दोलन के प्रवर्तकों ने इस अंश की लाखों प्रतियाँ छपवाकर सिख-समाज में वितरित की थीं।

है। आगम और तन्त्रशास्त्र ने एवं पुराणों ने भी इसी दृष्टि को उजागर किया है। वे भगवान् बुद्ध और महावीर के सार्वभौम उपदेशों को स्वीकार करने में परहेज नहीं करते। न जाने क्यों भारतीय समाज में यह दृष्टि धूमिल हो गई। बौद्ध दृष्टि के साथ ही समाज ने तन्त्रागम शास्त्र की समन्वयवादिनी दृष्टि को भी नकार दिया।

ख्रीष्टीय और इस्लामिक एकेश्वरवाद की पृष्ठभूमि में वैदिक धर्म की नई व्याख्या करने का प्रयास हुआ है। भारत में बौद्ध धर्म की पुनः प्रतिष्ठा का प्रयत्न भी थेरवाद की पृष्ठभूमि में हुआ है। इसमें महायान और मन्त्रयान को; चीनी, जापानी, तिब्बती, मंगोली भाषा में हुए उसके विशाल अनुवाद साहित्य को; उसी प्रकार भुला दिया गया है, जैसे कि वैदिक धर्म के पुनरुद्धारकों ने आगम-तन्त्रशास्त्र और पौराणिक वाङ्मय को नकार दिया। इस विचारधारा के समर्थक कुछ अखबार और बुद्धिजीवी भारत की दो-ढाई-हजार वर्ष की वैचारिक पर तन्त्रता की चर्चा करते रहते हैं। जाने-अनजाने ऐसे विचारक पाश्चात्त्य दुष्प्रचार के मोहरे बन गये हैं। सर्वधर्मसमभाव एक अच्छी कल्पना है, किन्तु हमें इतना तो देखना ही होगा कि क्या सभी धर्मों के अनुयायी इसके लिये आवश्यक योग्यता की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। धर्मान्तरण एक अत्यन्त हीन अधिनायकवादी मनोवृत्ति की उपज है। पूरी मानव जाति को उच्च मानसिक धरातल तक पहुँचाने के लिये हमें दो-ढाई हजार वर्षों में विकसित भारतीय वाङ्मय का ही मुख्य रूप से सहारा लेना होगा। तभी हम भारतीय धर्म और संस्कृति पर बिना सोचे-समझे किये जा रहे मिथ्या आक्षेपों का सही उत्तर दे सकेंगे और दुनिया के अत्यन्त पिछड़े मजहबों के चंगुल में फँसी मानवता का उद्धार कर सकेंगे। वेदों के साथ खींचतान करने से यह संभव नहीं होगा। सभी धर्मों की इस तरह की खींचतान के ही कारण भारत आज एक राष्ट्र, एक संस्कृति और एक भाषा की प्रतिष्ठा नहीं कर पा रहा है।

"तन्त्रशास्त्राणां सामयिक उपयोगः" शीर्षक हमारा निबन्ध हॉलैण्ड के लीडेन नगर में सम्पन्न विश्व संस्कृत परिषद् के सप्तम अधिवेशन में पढ़ा गया था। अब उस निबन्ध का "दि युटिलिटि आफ तन्त्राज इन मोडर्न टाइम्स" शीर्षक से प्रकाशन, वहीं से प्रकाशित तन्त्रविषयक कार्यशाला के विवरण में हो चुका है। "भारतीय तन्त्रशास्त्र" पर एक अखिल भारतीय कार्यशाला का आयोजन सारनाथ स्थित केन्द्रीय तिब्बती शिक्षा संस्थान द्वारा किया गया था और उत्तर-प्रदेश की संस्कृत अकादमी अपने संस्कृत साहित्य के बृहत् इतिहास में आगम और तन्त्रशास्त्र पर एक पृथक् खण्ड प्रकाशित कराने जा रही है। अनेक सुनिश्चित तर्कों के आधार पर हमारी उक्त बातें इनसे सिद्ध हो सकेंगी। इसी

प्रयोजन की सिद्धि के लिये श्रद्धेयचरण श्री श्री गोपीनाथ कविराज ने आगम और तन्त्रशास्त्र के अध्ययन और प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगा दिया था। अभी यह आवश्यक है कि उनके द्वारा स्थापित पद्धति से भारतीय तन्त्रशास्त्र का ही नहीं, योगशास्त्र का भी समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया जाय।

भारतीय तर्कशास्त्र के उज्ज्वल नक्षत्र आचार्य धर्मकीर्ति ने आत्मवाद को इसलिये अस्वीकार कर दिया कि इससे अपना-परायापन पनपता है, जो कि राग और द्वेष का जनक है और इसीसे संसार के सारे दोष पैदा होते हैं। कश्मारी शैव आचार्यों ने इसका उपचार बताया है कि हम अपनी अहन्ता का इतना विकास करेंगे कि पराया कोई रह ही नहीं जायगा। इसको वहाँ विश्वाहन्ता नाम दिया गया है। विरूपाक्षपंचाशिका में इस स्थिति का हृदयाभिराम वर्णन मिलता है। अब अधिक कुछ न कहकर स्कन्द-पुराण के इस वचन के साथ हम इस प्रस्तावना को पूरा करते हैं–

नश्यन्तु दुःखानि जगत्यपैतु लोभादिको दोषगणः प्रजाभ्यः ।
यथात्मनि भ्रातरि चात्मजे वा तथा नरस्यास्तु जनेऽपि भावः ॥

इस संसार के सारे दुःख दूर हो जाय। प्रजा में विद्यमान लोभ आदि मिट जाय। हमारा अपने प्रति, अपने भाई के प्रति अथवा पुत्र के प्रति जो भाव है, वही भाव साधारण मनुष्य के प्रति भी जाग उठे। जब हम धर्म, राष्ट्र, राज्य, भाषा, जाति, कुटुम्ब, कबीले आदि के भेदों को लांघ कर पूरी मानव जाति को आत्मसात् कर लेते हैं, तो यही तो वह अखण्ड दृष्टि विश्वाहन्ता के रूप में प्रतिष्ठित होती है॥

*

विषयानुक्रमणिका

ग्रन्थभागः

क्रियापादे

चर्यापादे

दाननिरूपणम्—कृष्णपक्षस्य रात्रौ मरणे प्राप्ते होमपूर्वकसंस्कारनिरूपणम्—मृतवीरशैवस्येष्टलिङ्गं रुद्राभिषेकपूर्वकं पूजयित्वा तद्वपुर्विमाने संस्थाप्य चतुर्भिर्वृषभादिनामाङ्कितैः पुरुषैः शिवारामं नेतव्यम्।

समाधिविधिकथने चतुर्थे पटले ४९-५२

शिवालयसमीपादिप्रदेशेषु समाधिरचनाकथनम्—समाधिखननप्रकार-कथनम्—समाधिविधानक्रमः—मृतशरीरे भस्मलवणादि निक्षिप्य मृत्तिकापूरणम्—समाधिक्रियानन्तरं तत्सुतस्य स्नानादिनिरूपणम्—केशवपनावश्यकत्वम्—शिखि-लक्षणम्।

लिङ्गस्थापनविधिकथने पञ्चमे पटले ५३-५८

भूनिक्षेपाद्यनन्तरं क्रियमाणक्रमावगतये रुद्रस्य प्रश्नः—परशिवस्योत्तरम्—समाधौ लिङ्गस्थापनविधिकथनम्—गोदानादिनिरूपणम्—वासोदकवर्जनम्—समाधिस्थापितलिङ्गस्य दशाहपर्यन्तं रक्षणम्—लिङ्गे नष्टे पुनरन्यलिङ्गस्य विधि-पूर्वकस्थापनम्—एकादशाहपर्यन्तं मृतस्य दिव्यशरीरावयववृद्धिक्रमनिरू-पणम्—विषमदिवसेषु नवाराधनक्रमनिरूपणम्—दशाहिककृत्यसमयेऽमावास्या-संक्रान्त्यादिकं चेत् तत्सुत स्तत्कर्म न समापयेदिति कथनम्—अदीक्षितपितृपुत्रयो-रनुष्ठीयमानक्रियाकथनम्—पितुः पिता तत्पिता वा अदीक्षितः सन् मृतश्चेत् परोक्षदीक्षापूर्वकसंस्कारविधिकर्तव्यता—ज्ञातीनां सप्तदिनात् पूर्वं कनिष्ठपुत्रस्य दशमदिने च वपन-क्षीरतर्पण-दशदानक्रमनिरूपणम्—समाधिस्थापितलिङ्गं पूजयित्वा गाणपत्यहोमं कृत्वा जले तन्निक्षिपेत्—पुण्याहवाचनादिक्रियानन्तरं गृहागमननिरूपणम्।

एकादशाहकर्तव्यविधिकथने षष्ठे पटले ५९-६३

एकादशाहकर्तव्यक्रियावगतये रुद्रस्य प्रश्नः—परशिवस्योत्तरम्—रुद्रहोम-वृषोत्सर्जनादिक्रमनिरूपणम्—आद्यमासिकादिषोडशाराधन-रुद्रगणाराधन-वृषोत्सर्ग-आचारादिषड्लिङ्गाद्याश्रयपञ्चाशद्रुद्राराधनक्रमः—एकादशमासिकोन-मासिक-त्रिपक्ष-षाण्मासिक-ऊनाब्द इति षोडशाराधनक्रमकथनम्—एकादशाह्निकषोडशाराधनद्वादशाह्निकतत्त्वसंयोजनकर्तव्यतानिरूपणम्—एकोद्दिष्ट-विधानम्—विश्वदेवपूजा—अभिश्रावणप्रदक्षिणसीमान्तगमनादिनिषेधकथनम्—एकादशेऽह्नि यथासम्भवं गणाराधन-वृषोत्सर्गविधान-आचारादिषड्लिङ्ग-

समाश्रयण-खड्गेशादिपञ्चाशद्रुद्राराधनक्रमकथनम् – खड्गेशादिपञ्चाशद्रुद्र-नामनिर्देशः।

द्वादशाहविधिकथने सप्तमे पटले ६४-६८

द्वादशाहिककृत्यविधानावगतये रुद्रस्य प्रश्नः – परशिवस्योत्तरम् – प्रेतत्वनिवृत्तिपूर्वकतत्त्वयोजनक्रमनिरूपणम् – वीरशैवानां सापिण्ड्यनिषेध-कथनम् – पितृ - पितामह - प्रपितामहस्वरूपमहेश्वर - सदाशिव - परमशिवात्मक-वर्गत्रयसिद्ध्यर्थं तत्त्वसंयोजनश्राद्धादिनिरूपणम् – नन्दिकेश - महाकालरूप-विश्वदेवयोः पितृ - पितामह - प्रपितामहरूप - महेश्वर - सदाशिव - परमशिवानां षट्त्रिंशत्तत्त्वानामष्टत्रिंशत्कलानामाराधनक्रमनिरूपणम् – नन्दिकेशमहेशादिस्थानेषु माहेश्वरानाहूय तदाराधनकर्तव्यतानिरूपणम् – तत्त्वसंयोजनादिना प्रेतत्व-(चतुर्थभाव)निवृत्तिकथनम्।

प्रकीर्णकविधिकथने अष्टमे पटले ६९-७४

प्रकीर्णकविधिविषये रुद्रस्य प्रश्नः – परशिवस्योत्तरम् – सोदरेषु यः कश्चित् स्थलान्तराद्दशाहमध्ये समागतश्चेत् समाधिकार्यमेकमन्तरा सर्वं कर्म समाचरेत् – कनिष्ठेन अथवाऽन्येन पितृकर्मणि कृते सति ज्येष्ठपुत्र उदकदानं तत्त्वसंयोजनं च कुर्यात् – श्राद्धकर्तुर्भार्या अथवा मृतस्य पत्नी रजस्वला चेत् श्राद्धविधिभेदः – मृतानां क्लीबानां दुष्टस्त्रीणामद्वादशवयस्कानां ब्रह्मचारिणां नैष्ठिकानां यतीनां च तत्त्व-संयोजनं वर्जयित्वा ईशानबलिः प्रदातव्य इति निरूपणम् – पार्वणाराधनक्रमः – पार्वणाराधनवत् प्रत्यब्दं प्रतिमासं चाराधनं कर्तव्यम् – दैवपित्र्यकर्मणि पाकशेषं यो न भङ्क्ते तस्य कर्म निरर्थकम् – नक्तव्रतसङ्कटादिसमयेष्वपि श्रद्धापूर्वकं श्राद्धो विधेयः – आराधनस्वरूपनिरूपणम् – श्राद्धद्वैविध्यकथनम् – श्राद्धाङ्गनिरूपणम् – वीरशैव-श्राद्धेषु होमपिण्डतिलादिनिषेधः – वीरशैवव्रतस्थाय सापिण्ड्यश्राद्धकरणे नरकप्राप्तिः – आराधनत्रैविध्यम् – गृहस्थाधिकृतश्राद्धस्वरूपम् – निराभार्यधिकृत-श्राद्धकथनम् – सांकल्पिकश्राद्धकथनम् – श्राद्धकालेऽर्चनीयमाहेश्वरलक्षण-निरूपणम् – मध्यममाहेश्वरलक्षणम् – वर्जनीयमाहेश्वरलक्षणम् – माहेश्वरार्चा-विधिः।

प्रत्याब्दिकविधिकथने नवमे पटले ७५-८५

प्रत्याब्दिकविधानावगतये रुद्रस्य प्रश्नः – परशिवस्योत्तरम् – अपसव्या-

दिसप्तवर्जनम् – पिता महेश्वरः, तत्पिता सदाशिवः, प्रपितामहः परशिव इति पित्राराधनदेवतारूपवीरमाहेश्वरपूजादिकथनम् – नन्दिमहाकालरूपविश्वदेवस्थाने पितृ - पितामह - प्रपितामहस्थाने च वीरमाहेश्वराह्वानम् – तेषां पादपूजाविधानम् – विश्वदेवादीनां नामगोत्रपुरस्सरमर्चनादिसत्कारकथनम् – अन्नशुद्धीकरणकथनम्–स्वाहा-स्वधाभ्यां देवतातृप्तिपितृतृप्तिविधानम् – पुनरावृत्तिरहित -पितृतृप्तिनिरूपणम् – आपोशानप्रदानक्रमकथनम् – शिवस्मरणपूर्वकसर्वकर्माचरणसाफल्यनिरूपणम् – भोजनसमये भोजनानन्तरमनुष्ठीयमानः क्रमः – माहेश्वराणामाशीर्वचनग्रहणम् – श्राद्धकर्मणि पितृ - मातृ - प्रभृतीनां नामनिर्देशः – श्राद्धकर्मानुष्ठानजन्यसत्फलकथनम् – श्राद्धकर्माननुष्ठानजन्यदुष्फलकथनम् ।

आशौचविधिकथने दशमे पटले ८६-९२

शाम्भवव्रतनिष्ठानां वीरशैवानां किमर्थमाशौचविधिरिति रुद्रस्य प्रश्नः – संसारसम्पर्काद् वीरशैवानामप्याशौचविधिरनुष्ठेय इति परशिवस्योत्तरम् – आशौचविधेरावश्यकत्वम् – आशौचद्वैविध्यनिरूपणम् – ब्राह्मणक्षत्रिय -वैश्य - शूद्रभेदेन आशौचदिनव्यवस्था – जातके मृतके च ज्ञातीनां दम्पत्योः सोदराणां चाशौचदिनव्यवस्था – अजातदन्ते शिशौ, अकृतचौले बाले च मृते सत्याशौचविधिः – अनुपनीते मृते सति मातापित्रोर्दिनत्रयपर्यन्तमाशौचम्; उपनीते मृते सति पूर्णाशौचनिरूपणम् – ज्ञातिसगोत्रादीनां विषये आशौचदिनसंख्याव्यवस्था – मातुलादीनां त्रिरात्रं बान्धवानां च पक्षिणी – पक्षिणीशब्दनिर्वचनम् – जाताशौचापेक्षया मृताशौचस्य प्राधान्यम् – पितुर्दशाहमध्ये माता यदि मृता भवेत्, तदा पितुः पूर्णं निर्वर्त्य मातुः पक्षिणी ग्रहीतव्या – नैष्ठिक - वनस्थयति-ब्रह्मचारिणां मरणाशौचाद्यभावः – दानादिसमये सद्यःशौचव्यवस्था – सूतकमृतकादौ च सन्ध्यापूजनादिकं नहि त्याज्यम् – शाम्भवव्रतिनां वीरशैवानां मुक्तिः – अन्येषां बन्धनम् – ग्रन्थपरिसमाप्तिर्मकुटागममहिमा च ।

परिशिष्टभागः

मकुटागमे उत्तरभागे

क्रिया-चर्यापादौ

प्रथमः पटलः

कैलासशिखरावासः कालकालः कृपानिधिः ।
अपारमहिमाधारो महादेवो महेश्वरः ॥ १॥
अशेषजगदाधारं सर्वकारणकारणम् ।
आदिमध्यान्तरहितमप्रमेयमनाकुलम् ॥२॥
असंख्याताद्भुताचिन्त्यस्वशक्तिपरिशोभितम् ।
परं शिवं समागम्य प्रणम्योवाच भक्तिमान् ॥३॥

रुद्र उवाच

आदिदेव कृपासिन्धो पञ्चकृत्यपरायण ।
यतस्त्वं सर्वकर्ताऽसि सर्वज्ञः सर्वमप्यसि ॥४॥
अतः सर्वोपकाराय निगमागमसंहिताः ।
शब्दार्थमुख्या भवता निश्वासवदुदीरिताः ॥५॥
श्रीमन्मुखादधिगतं मकुटं मकुटायितम् ।
भगवन् श्रोतुकामोऽस्मि तदीयं भागमुत्तरम् ॥६॥

कैलास पर्वत के शिखर पर निवास करने वाले, काल के भी काल, कृपानिधि, अपार महिमा के आधार, महेश्वर, महादेव समस्त जगत् के आधारभूत, सभी कारणों के कारण, आदि, मध्य और अन्त से रहित, अप्रमेय, निर्विकार, अपनी असंख्य अद्भुत अचिन्त्य शक्तियों से परिशोभित परम शिव के पास जाकर प्रणाम कर के भक्तिमान् रुद्र ने इस प्रकार पूँछा।।१-३ ।।

भगवान् रुद्र प्रश्न करते हैं—

हे कृपा के सागर, सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह नामक पांच कृत्यों में निरन्तर लगे हुए हे आदिदेव! आप सबके कर्ता हैं, सर्वज्ञ हैं और सब कुछ आप ही हैं। इसी लिये सबके उपकार के लिये शब्द और अर्थ की समान प्रतिष्ठा वाली, नाना प्रकार की निगम और आगम की संहिताओं का उपदेश आपने श्वास-प्रश्वास की तरह अनायास किया है।।४-५।। आपके श्रीमुख से सभी आगमों में मकुटायमान श्रेष्ठ मकुटागम भी हमें प्राप्त हुआ है। हे भगवन्! अब मैं उस मकुटागम के उत्तर भाग को आपसे सुनना चाहता हूँ।।६।।

उत्तमा यत्र कथ्यन्ते साक्षान्मोक्षप्रदायिनः ।
विशिष्टधर्मा इति हि शाम्भवव्रतधारिणाम् ।
उक्तं पुरस्ताद् भवता तदिदानीं निबोध मे ॥७॥

परशिव उवाच

शृणुष्वावेदयिष्यामि रहस्यं मकुटोत्तरे ।
शाम्भवव्रतमाहात्म्यमाह्निकं व्रतिनामपि ॥८॥
अर्चाविशेषाः पूजोपकरणानां च साधनम् ।
तदन्त्येष्टिप्रकारश्च कथ्यन्ते ह्यत्र संग्रहात् ॥९॥

शाम्भवव्रताचरणम्

तितीर्षुर्जन्मवाराशिं नानादुःखग्रहाकुलम् ।
वेदागमान्तविदितं शाम्भवव्रतमाचरेत् ॥१०॥

इस [1]मकुटागम के उत्तर भाग में साक्षात् मोक्ष को देने वाले उत्तम और विशिष्ट धर्मों का उपदेश आपने शांभवव्रत को धारण करने वालों के लिये किया है। उन्हीं को आप अभी मुझे बताइये ॥७॥

परशिव उत्तर देते हैं—

हे रुद्र! मकुटोत्तर आगम के रहस्य को मैं तुम्हें बताऊँगा। शांभवव्रत के माहात्म्य को और इनका आचरण करने वाले शिवभक्तों की दिनचर्या कैसी होनी चाहिये, इसको भी मैं तुम्हें बताऊँगा ॥८॥ अर्चा (पूजा) के विशेष अनुष्ठानों को, पूजा के उपकरणों को जुटाने की पद्धति को और शैवों की अन्त्येष्टि पद्धति को भी यहाँ संक्षेप में कहा जा रहा है ॥९॥

जो व्यक्ति नाना प्रकार के दुःखरूपी ग्राहों (मगर) से भरे हुए इस जन्ममरण-रूपी जलराशि (संसारसागर) को पार करना चाहता है, उसे वेद और आगम के अन्तिम भाग में बताये गये शांभवव्रत का आचरण करना चाहिये ॥१०॥ स्थूल शरीर,

---

१. कामिक से लेकर वातुल पर्यन्त २८ सिद्धान्त शैवागमों में मकुटागम का स्थान १७ वाँ है। इसके अनेक वचन तन्त्रालोक व उसकी टीका विवेक आदि में उद्धृत हैं। उनका संग्रह लुप्तागमसंग्रह में कर दिया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उस मकुटागम का उत्तर भाग है। सिद्धान्त शिखामणि (५.१४) में बताया गया है कि वीरशैव मत सिद्धान्त शैवागमों के उत्तर भाग में प्रतिपादित है। यहीं आगे ८ वें श्लोक में इस आगम को मकुटोत्तर ही कहा गया है।

[2]तनुत्रयगतानादिमलत्रयविशोधनाः ।
लिङ्गत्रयानुसन्धानविशोषितभवाब्धयः ॥११॥
कल्याणदेशिककृपाकर्तिताशेषबन्धनाः ।
भक्तिदूतीसमानीतमुक्तिकान्तासमागमाः ॥१२॥
ज्ञानसूर्योदयकृततमःकूटविपाटनाः ।
वेधामनुक्रियादीक्षा यत्र ह्यन्तर्गताः पराः ॥१३॥
शिरोव्रतं महागुह्यमिदं तेनैव लभ्यते ।
यः कर्मसाम्यसंगत्या न पुनर्जन्मभाग् भवेत् ॥१४॥

मोक्षशाम्भवव्रतयोः साध्यसाधनात्मकत्वम्

अमृतत्वं यदा रुद्र विषेण लभते जनः ।
व्रतमेतद् विहायाथ दुःखस्यान्तं समेष्यति ॥१५॥

लिंग शरीर और कारण शरीर गत अनादि काल से चले आ रहे कार्म, मायीय और आणव नामक तीन प्रकार के मलों का शोधन करने वाले, इष्ट, प्राण और भाव नामक त्रिविध लिंगों के अनुसन्धान से जिन्होंने संसार रूपी सागर को सुखा दिया है॥११॥ सबका कल्याण करने वाले आचार्य की कृपा से जिनके समस्त बन्धन कट चुके हैं, भक्ति रूपी दूती के द्वारा जिनको मुक्ति रूपी कान्ता का समागम कराया गया है॥१२॥ ज्ञानरूपी सूर्य के उदय से जिनका अज्ञानरूपी अन्धकार दूर होगया है और जिनको वेधा, मनु और क्रिया नाम की दीक्षा प्राप्त हो गई है॥१३॥ ऐसे ही व्यक्तियों को अत्यन्त गोपनीय शिरोव्रत[3] प्राप्त होता है। जिससे कि [4]कर्मसाम्य की प्राप्ति होती है। फिर उस व्यक्ति को पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता ॥१४॥

---

२. अनुभवसूत्र (५.५२-५३) से तुलना कीजिये।
३. शिवव्रत को ही यहाँ शिरोव्रत कहा गया है। इसको शिरोव्रत इसलिये कहा गया है कि यह सभी व्रतों में श्रेष्ठ है।
४. कर्मसाम्य शक्तिपात (ईश्वर का अनुग्रह) का कारण माना गया है। कर्मसाम्य का अभिप्राय है कर्मों (पुण्य और पाप) की समानता। इस स्थिति में परस्परविरोधी कर्म सुन्दोपसुन्द न्याय से आपस में ही एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं।

न मामधन्यो यजते नाधन्यो मोक्षमिच्छति ।
नाप्यधन्यः समाप्नोति शाम्भवव्रतमुत्तमम् ॥१६॥
शाम्भवव्रतहीनः केवलः पशुः
यः सर्वशास्त्रविदपि कर्मयोगरतोऽपि च ।
शाम्भवव्रतहीनोऽयं प्रोच्यते केवलः पशुः ॥१७॥
शाम्भवव्रतमाहात्म्ये योऽर्थवादं हि मन्यते ।
स सर्वयातनाभोगी भवत्येव न संशयः ॥१८॥

इति श्रीमकुटागमे क्रियापादे शाम्भवव्रतमाहात्म्यनिरूपणं नाम प्रथमः पटलः ॥१॥

हे रुद्र! जब कोई व्यक्ति विषपान करके अमृतत्व प्राप्त कर सकता हो, तब वह इस शिरोव्रत के बिना भी मुक्ति पा सकता है। [5]इसका भाव यह है कि जैसे विष पीकर अमृतत्व प्राप्त करना असंभव है, उसी तरह से इस शिरोव्रत के बिना मुक्ति पाना भी संभव नहीं है॥१५॥ अधन्य व्यक्ति मेरी पूजा नहीं करता और न अधन्य व्यक्ति मोक्ष की ही कामना करता है। इसी तरह से अधन्य व्यक्ति इस उत्तम शांभवव्रत को भी प्राप्त नहीं कर सकता॥१६॥

जो सभी शास्त्रों को जानता है, जो कर्मयोग में सदा लगा रहता है, तो भी यदि उसने शांभवव्रत का अनुष्ठान नहीं किया है, तो वह कोरा पशु कहा जाता है॥१७॥ शांभवव्रत का यहां जो माहात्म्य बताया गया है, उसमें जो व्यक्ति अर्थवाद की आशंका करता है, उसे सभी तरह की यातनाएं भोगनी पड़ती हैं, इसमें संदेह नहीं है॥१८॥

इस प्रकार मकुटागम के क्रियापाद का शांभवव्रत के माहात्म्य को बताने वाला यह पहला पटल समाप्त हुआ॥१॥

★

---

५. "यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः। तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥" (६.२०) इस श्वेताश्वतर श्रुति से प्रस्तुत श्लोक की तुलना कीजिये।

द्वितीयः पटलः

रुद्र उवाच

परमेश्वर सर्वात्मन् परिपूर्णगुणाम्बुधे ।
शाम्भवानामनुष्ठेयमाह्निकं सङ्गिरस्व मे ॥१॥

परशिव उवाच

आह्निकं तु प्रवक्ष्यामि शाम्भवानामनुत्तमम् ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा भवपाशनिकृन्तनम् ॥२॥

प्रातःकृत्यानि

बुद्ध्यमानो हि मद्भक्तो मुहूर्ते ब्रह्मसम्मिते ।
संस्मरन् मामिष्टलिङ्गं कराभ्यां स्पर्शयेद् दृशोः ॥
धर्मार्थावनुचिन्त्याथ माहेशान् प्रणमेदपि ॥३॥
व्रतिनं सत्रिणं दान्तं भक्तं लिङ्गाङ्गसङ्गिनम् ।
प्रातःकाले तु यः पश्येत् स ईप्सितमवाप्नुयात् ॥४॥
पाषण्डं पतितं क्रूरमभक्तं देवनिन्दकम् ।
प्रातरुत्थाय यः पश्येत् सोऽनिष्टं समवाप्नुयात् ॥५॥

भगवान् रुद्र प्रश्न करते हैं—

हे पुण्यों के परिपूर्ण सागर, सभी के आत्मस्वरूप परमेश्वर! मुझे आप शांभवव्रत का परिपालन करने वाले इष्टलिंगधारी शिवभक्तों के द्वारा अनुष्ठेय आह्निक का, दिनचर्या का, भलीभाँति उपदेश करें ॥१॥

परशिव उत्तर देते हैं—

इष्टलिंगधारी शिवभक्तों के लिये मैं संसाररूपी पाश को काटने वाले श्रेष्ठ आह्निक का, दिनचर्या का तुम्हें उपदेश कर रहा हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो ॥२॥

प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में सोकर उठ जाने वाला मेरा भक्त मेरा स्मरण करता हुआ इष्टलिंग को हाथों में लेकर अपने दोनों नेत्रों से स्पर्श करावे, धर्म और अर्थ की चिन्ता करता हुआ माहेश्वरों (जंगमों) को भी प्रणाम करे ॥३॥ व्रत का अनुष्ठान करने वाले, यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले, संयमी, इष्टलिंगधारी शिवभक्त का जो प्रातःकाल दर्शन करता है, उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है ॥४॥ पाखण्डी, पतित, निर्दयी, भक्तिभावना

शौचविधिः

बहिर्गच्छेदपि ततो दूरादावसथाद् बुधः ।
उपवीतं लिङ्गसूत्रं पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् ।
कृत्वा प्रावृत्य च शिरो विण्मूत्रोत्सर्गमाचरेत् ॥६॥
ततो यावन्मनःशुद्धिर्मृत्स्नया च जलेन च ।
शौचं कुर्यात् प्रयत्नेन शौचहीनो पतत्यधः ॥७॥
प्रक्षालिताङ्घ्रिपाणिश्च गण्डूषान् विसृजेदपि ।
आत्मविद्याशिवाख्यानि तत्त्वानि स्वाहया सह ।
आचामेदुच्चरन्नेवं त्रिवारं शाम्भवव्रती ॥८॥

से रहित, देवता की निन्दा करने वाले व्यक्ति का जो प्रातःकाल दर्शन करता है, उसे अनिष्ट की प्राप्ति होती है ॥५॥

इसके बाद विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने घर से दूर बाहर चला जाय और उपवीत एवं पंचलिंगसूत्र को कण्ठ से[1] पीठ की तरफ कर, अपना सिर ढँक कर मल और मूत्र का त्याग करे ॥६॥ इसके बाद जब तक मन की शुद्धि हो, तब तक मिट्टी लगाकर और जल से धोकर प्रयत्नपूर्वक हाथ-पैर आदि को शुद्ध करे, क्योंकि अशुचि व्यक्ति का अधःपतन होता है ॥७॥ हाथ-पैर धोने के बाद कुल्ला करना चाहिये। [2]आत्म, विद्या और शिव नामक तीन तत्त्वों का स्वाहा के साथ, अर्थात् आत्मतत्त्वाय स्वाहा, विद्यातत्त्वाय स्वाहा, शिवतत्त्वाय स्वाहा – इस तरह से उच्चारण करता हुआ शांभवव्रत का पालन करने वाला शिवभक्त तीनं बार आचमन करे ॥८॥

---

१. यहाँ यह विचारणीय है कि उपवीत को तो पीठ की तरफ अनायास किया जा सकता है, किन्तु लिंगसूत्र में ऐसा संभव नहीं है। अतः इष्टलिंग को कण्ठ में बांधकर शेष लिंगसूत्र को पीठ पर कर देना चाहिये। सिद्धान्तशिखामणि (६.५३) में कहा गया है कि इष्टलिंग को नाभि के नीचे नहीं धारण करना चाहिये। उसी पद्धति से यज्ञोपवीत को भी मल-मूत्र के त्याग के समय कान पर चढ़ा लेने का विधान है।

२. आत्म, विद्या और शिव तत्त्वों की परिभाषा त्रिपुरा सम्प्रदाय के ग्रन्थ सौभाग्यसुधोदय में इस प्रकार की गई है — "मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात्। शक्तिशिवौ शिवतत्त्वम्" (१.४९)। ऐसी ही परिभाषा नेत्रतन्त्र (मृत्युंजयभट्टारक) में भी मिलती है।

दन्तधावनस्नानादिविधानम्

तत आम्रादिभिः काष्ठैर्दन्तधावनमाचरेत् ।
प्रक्षाल्य च मुखं धीमानाचम्य च ततः परम् ।
शिवतीर्थं विधायाथ प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥९॥
संकल्पः सूक्तपठनं मार्जनं चाघमर्षणम् ।
देवतातर्पणं चैव स्नानपञ्चाङ्गमुच्यते ॥१०॥
अप्रवाहोदकस्नानं विप्रपादावनेजनम् ।
गायत्रीजपमर्घ्यं च आदित्याभिमुखश्चरेत् ।
देवर्षितर्पणं कुर्याद् यक्ष्माणमपि तर्पयेत् ॥११॥
ततो धौते परीदध्याद् वाससी भानुदर्शिते ।
आचम्य चैव संकल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत् ॥१२॥

भस्मस्नानत्रिपुण्ड्रधारणादिकम्

शिवाग्निजनितेनाथ यथाकल्पार्जितेन वा ।

इसके बाद आम आदि की दतुअन से दाँत साफ करे। इसके बाद हाथ-मुँह धोकर पुनः आचमन करे और तब शिवतीर्थ का आवाहन कर प्रातःकालीन स्नान करे॥९॥ संकल्प करना, सूक्त का पाठ करना, मार्जन और अघमर्षण[३] करना एवं देवता का तर्पण करना – ये पाँच स्नान के अंग माने जाते हैं॥१०॥ न बहने वाले वापी, कूप, तालाब आदि के जल में स्नान, लिंगी ब्राह्मण के पाद का पूजन, गायत्री का जप और अर्घ्यदान – इन सब कार्यों को सूर्य के अभिमुख होकर करे। साथ ही देवता, ऋषि और यक्ष्मा (पितरों) का तर्पण भी करे॥११॥ इसके बाद सूर्य को दिखला कर धुले हुए वस्त्र (धोती और दुपट्टा) धारण करने चाहिये। तब आचमन और संकल्प के उपरान्त भस्मस्नान करे॥१२॥

[४]शिवाग्नि से बनाई गई अथवा कल्पविधिपूर्वक बनाई भस्म का उद्धूलन विधि से सर्वांग में लेपन अथवा विभिन्न अंगों में त्रिपुण्ड्र के रूप में धारण करना चाहिये। बत्तीस

---

३. दाहिने हाथ में जल लेकर और बांये हाथ से उसे ढककर ऋग्वेद (१०.१९०) के अघमर्षण सूक्त के "ऋतं च सत्यं च" आदि तीन मन्त्रों से उस जल को दाहिनी तरफ से अपने चारों ओर छोड़े। इस क्रिया को अघमर्षण कहा जाता है।

४. शिवाग्नि के स्वरूप के लिये शिवपुराण की प्रथम विद्येश्वर संहिता (१८.६२-६९) देखिये।

उद्धूल्य चैव सर्वाङ्गं भस्मना चावगुण्ठ्य च ।
द्वात्रिंशत्सु प्रदेशेषु त्रिपुण्ड्रं धारयेत् क्रमात् ॥१३॥
उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोर्द्वयोः ।
नासावक्त्रगलेष्वेवमंसद्वयमनन्तरम् ॥१४॥
कूर्परे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः ।
नाभौ गुह्यद्वये चैव ऊर्वोः स्फिग्बिम्बजानुषु ॥१५॥
जङ्घाद्वये पादयोश्च द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् ।
ततः पुनश्च संकल्प्य रुद्राक्षान् बिभृयान्नरः ॥१६॥

रुद्राक्षधारणम्

शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशत्तु शिरसा वहेत् ।
षट्त्रिंशत्तु गले दद्याद् बाह्वोः षोडश षोडश ॥१७॥
द्वादश मणिबन्धेऽपि स्कन्धे पञ्चशतं वहेत् ।
अष्टोत्तरशतैर्मालां जपयज्ञे प्रकल्पयेत् ।
सुप्ते पीते सदा कालं रुद्राक्षान् बिभृयान्नरः ॥१८॥

स्थानों में त्रिपुण्ड्र का विधान शास्त्रों में बताया गया है ॥१३॥ उत्तमांग (सिर), ललाट,दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ और दोनों कन्धों पर भस्म लगाई जाती है ॥१४॥ इसी तरह से कूर्पर (कोहनी), मणिबन्ध (कलाई) हृदय, दोनों पसलियाँ, नाभि, दोनों गुह्यस्थान, दोनों ऊरु (जंघा), दोनों नितम्ब, दोनों घुटने, दोनों पिण्डलियाँ, दोनों पैरो में भी भस्म लगाई जाती है ॥१५॥ इन स्थानों के साथ दोनों जंघाओं और दोनों पैरों पर भी भस्म लगाई जाती है। भस्म लगाने के ये ही ३२ उत्तम स्थान माने गये हैं। भस्मस्नान और त्रिपुण्ड्र धारणविधि को सम्पन्न कर पुनः संकल्प करना चाहिये और तब रुद्राक्ष के धारण की विधि को सम्पन्न करना चाहिये ॥१६॥

शिखा[५] में एक रुद्राक्ष और सिर पर तीस रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। गले में ३६ तथा दोनों बाहुओं में सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण किये जाते हैं ॥१७॥ कलाई पर बारह तथा कन्धे पर पाँच सौ रुद्राक्ष धारण करने चाहिये। जपयज्ञ के लिये १०८ रुद्राक्ष की माला बनाना उचित है। खाते - पीते, सोते - जागते सभी समयों में सदा रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥१८॥ एक हजार रुद्राक्ष धारण करना उत्तम माना गया है।

---

५. इस प्रसंग में सिद्धान्तशिखामणि का "शिखायामेकमेकास्यम्" (७.५४-५८) आदि प्रकरण भी देखना चाहिये।

त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते ।
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तमेवं भेदेन धारयेत् ॥१९॥
शिरसीशानमन्त्रेण मुखे तत्पुरुषेण तु ।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥२०॥
अघोराख्येन मन्त्रेण करयोर्धारयेत् सुधीः ।
पञ्चाशदक्षसहितां व्योमव्यापीति चोदरे ॥२१॥
पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमालाः पञ्च सप्त च ।
अथवा मूलमन्त्रेण सर्वाण्यक्षाणि धारयेत् ॥२२॥

सूर्यार्घ्यदानं गायत्रीजपः

ततो मद्वपुषे सूर्यायार्घ्यत्रितयमर्पयेत् ।
अथ मद्देवतां देवीं सावित्रीं प्रयतो जपेत् ॥२३॥

---

५०० रुद्राक्ष धारण करना मध्यम और तीन सौ रुद्राक्ष धारण करना कनिष्ठ कहा गया है। इन तीनों विकल्पों में अपनी रुचि के अनुसार कोई एक पक्ष स्वीकार किया जा सकता है॥१९॥ सिर पर ईशान मन्त्र से, मुख पर तत्पुरुष मन्त्र से, गले में अघोर मन्त्र से रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। हृदय पर भी अघोर मन्त्र से ही रुद्राक्ष धारण किये जाते हैं॥२०॥ बुद्धिमान् व्यक्ति अघोर मन्त्र से दोनों हाथों में रुद्राक्ष धारण करे और [६]व्योमव्यापी मन्त्र से पचास रुद्राक्ष वाली माला उदर पर धारण करे॥२१॥ [७]ईशान आदि पंचब्रह्म मन्त्रों से छः अंग[८] मन्त्रों से रुद्राक्ष की तीन, पांच अथवा सात लड़ी की माला को धारण करना चाहिये। अथवा केवल मूल (पंचाक्षर) मन्त्र से ही सभी रुद्राक्षों और मालाओं को धारण किया जा सकता है॥२२॥

भस्म और रुद्राक्ष धारण कर लेने के उपरान्त मेरे ही शरीरभूत सूर्य को तीन बार अर्घ्य प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद मेरी भी देवता सावित्री देवी का एकाग्र मन से जप करना चाहिये॥२३॥

---

६. शैवागमों में ''व्योमव्यापिन् व्यापिन्'' इत्यादि एकाशीति पदों का उल्लेख मिलता है।
७. ''ईशानः सर्वविद्यानाम्, तत्पुरुषाय विद्महे, अघोरभ्योऽथ घोरेभ्यः, सद्योजातं प्रपद्यामि, वामदेवाय नमः—ये पांच मन्त्र शैवागमों में पंचब्रह्म के नाम से प्रख्यात हैं (तै०आ० १०.४३-४७)।
८. हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौषट् और अस्त्राय फट्—ये छः अंग मन्त्र हैं।

शिवाग्निसप्तजिह्वोपासनम्

घोरां मम तनुं वह्निं समुपासीत संयतः ।
सुवर्णा कनका रक्ता कृष्णा चैव तु सुप्रभा ।
बहुरूपाऽतिरक्ता च सप्त जिह्वाः प्रकीर्तिताः ॥२४॥
सुवर्णा वारुणी जिह्वा कनका मध्यमा स्मृता ।
रक्ता चैवोत्तरा जिह्वा कृष्णा याम्यदिशि स्थिता ॥२५॥
सुप्रभा पूर्वदिग्जिह्वा अतिरक्ताऽग्निगोचरा ।
ऐशानी बहुरूपा च जिह्वास्थानान्यनुक्रमात् ॥२६॥
विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु ।
उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु ॥२७॥
पूर्वदिक् सर्वकाम्येषु आग्नेयी शान्तिकर्मसु ।
ऐशानी चोग्रकार्येषु सदा होमस्य शस्यते ॥२८॥
पञ्चवक्त्रयुतं रक्तं सप्तजिह्वाविराजितम् ।
दशहस्तं त्रिनेत्रं च सर्वाभरणभूषितम् ॥२९॥

वह्नि मेरा घोर स्वरूप है। संयत चित्त से इसकी भी उपासना करनी चाहिये। सुवर्णा, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्ता–ये सात अग्नि की जिह्वाओं के नाम हैं॥२४॥ सुवर्णा जिह्वा का स्थान पश्चिम दिशा में, कनका का मध्य में, रक्ता का उत्तर दिशा में और कृष्णा का स्थान दक्षिण दिशा में माना गया है॥२५॥ सुप्रभा जिह्वा का पूर्व दिशा में, अतिरक्ता का आग्नेय कोण में और बहुरूपा का स्थान ईशान कोण में माना गया हैं। अग्नि की जिह्वाओं के ये ही सात स्थान हैं॥२६॥ विवाह के अवसर पर पश्चिम दिशा की सुवर्णा जिह्वा में, यज्ञ कर्म के अवसर पर मध्य स्थित कनका जिह्वा में, उपनयन में रक्ता जिह्वा में और पितृकर्म में दक्षिण दिशा की कृष्णा जिह्वा में आहुति दी जाती है॥२७॥ काम्य कर्मों के लिये पूर्व दिशा की सुप्रभा जिह्वा में, शान्ति कर्म में आग्नेय कोण की अतिरक्ता जिह्वा में और उग्र कार्यों के लिये ईशान कोण की बहुरूपा जिह्वा में होम सदा प्रशंसनीय माना गया है॥२८॥ पांच मुख वाले, रक्त वर्ण, सात जिह्वाओं के साथ विराजमान, दस हाथ और तीन नेत्र वाले, सभी आभूषणों से अलंकृत॥२९॥ रक्त वस्त्र धारण किये हुए, कमल के ऊपर विराजमान,

रक्तवस्त्रपरीधानं पङ्कजोपरि संस्थितम् ।
बद्धपद्मासनासीनं दशायुधसमन्वितम् ॥३०॥
कनका बहुरूपा चातिरक्ता तु ततः परम् ।
सुप्रभा चैव कृष्णा च रक्ता चान्या हिरण्मयी ॥३१॥
ऊर्ध्ववक्त्रे स्थितास्तिस्रः शेषाः प्रागादिदिक्स्थिताः ।
शिवाग्निमेवं ध्यात्वैव सायंप्रातर्हुनेद् बुधः ॥३२॥

गुरुशरणागतिः

अग्निकार्यं विधायाथ कर्तव्यमभिवादनम् ।
शरणागतिस्तु कर्तव्या गुर्वादिभ्यो यथा शृणु ॥३३॥
दक्षहस्तेन संगृह्य निश्चलो लिङ्गपेटिकाम् ।
पादाङ्गुष्ठौ गुरोः सव्यहस्तेन परिगृह्य च ।
संस्पर्शयन्नेत्रयोस्त्रिर्गुर्वादीन् शरणं व्रजेत् ॥३४॥

पद्मासन बाँध कर बैठे हुए, दस प्रकार के आयुधों से अलंकृत शिवाग्नि का ध्यान करना चाहिये ॥३०॥ कनका, बहुरूपा, अतिरक्ता, सुप्रभा, कृष्णा, रक्ता और हिरण्मयी—इन सात जिह्वाओं में से पहली तीन ऊर्ध्व मुख (ईशान) में स्थित हैं और शेष जिह्वाएं अन्य चार पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में स्थित भगवान् रुद्र के [1]तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात और वामदेव मुखों में स्थित हैं। इस प्रकार शिवाग्नि का ध्यान कर विद्वान् व्यक्ति सायं और प्रातः उसमें आहुति समर्पित करे ॥३१-३२॥

अग्निकार्य की सारी विधि को सम्पन्न कर अभिवादन करना चाहिये और गुरु एवं जंगम की शरण में जाना चाहिये। अब तुम उसकी विधि सुनो ॥३३॥ अपने दाहिने हाथ में इष्टलिंग की पेटिका ग्रहण कर निश्चल भाव से गुरु के पैरों के अंगूठों के नीचे बायां हाथ रखकर तीन बार नेत्रों से अंगूठों का स्पर्श करावे, अर्थात् अपनी दाई आँख से दाहिने अंगूठे की और बांई आँख से बांये अंगूठे को तीन बार स्पर्श करना चाहिये। इसी विधि से गुरु और जंगम की शरण में भी जाना चाहिये ॥३४॥

---

१. तन्त्रालोक की विवेक टीका में उद्धृत श्रीकण्ठीसंहिता में पूर्व के तत्पुरुष वक्त्र से गारुड़ तन्त्रों का, दक्षिण के अघोर मुख से भैरवागमों का, पश्चिम के सद्योजात वक्त्र से भूत तन्त्रों का, उत्तर के वामदेव मुख से वाम तन्त्रों का और ऊर्ध्व ईशान मुख से सिद्धान्तागमों का आविर्भाव प्रदर्शित है। तदनुसार ही यहाँ मुखों का क्रम निर्धारित किया गया है।

दिवसद्वितीयतृतीयचतुर्थभागकृत्यानि

एभिश्चाष्टांशकमह आद्यमेवं समापयेत् ।
द्वितीये च तथा भागे ह्यभ्यसेन्निगमागमान् ।
जपेदध्यापयेच्चाथ शास्त्राण्यपि विचारयेत् ॥३५॥
समित्पुष्पकुशादीनि यथालाभमुपाहरेत् ।
भागे यतेत तार्तीये पोष्यवर्गार्थसिद्धये ॥३६॥
भागे त्वथ चतुर्थे तु स्नानार्थं मृदमाहरेत् ।
शिवतीर्थं विधायाथ मध्याह्नस्नानमाचरेत् ॥३७॥

मध्याह्नस्नानसन्ध्योपासनम्

भस्मस्नानं विधायाथ त्रिपुण्ड्रमपि धारयेत् ।
माध्याह्निक्यौ तथा सन्ध्ये निर्वर्त्य च यथाविधि ।
अथ पञ्च महायज्ञाः कर्तव्या गृहिणाऽन्वहम् ॥३८॥

दिन के आठ भागों में से पहले भाग में ऊपर बताये गये विधान का अनुष्ठान करना चाहिये। दिन के दूसरे भाग में [10]निगम और आगम का अभ्यास करे, जप करे और शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन के साथ उन पर विचार करे॥३५॥ दिन के तृतीय भाग में समिधा, पुष्प, कुशा आदि पूजासामग्री का संग्रह करे और पोष्य वर्ग के भरण-पोषण का उपाय करे॥३६॥ दिन के चतुर्थ भाग में स्नान और शुद्धि के लिये मिट्टी ले आवे और शिवतीर्थ की भावना कर मध्याह्न वेला का स्नान करे॥३७॥

इसके बाद भस्मस्नान कर त्रिपुण्ड्र धारण करे। निगमागम विहित दोनों [11]मध्याह्न की सन्ध्याओं की इस प्रकार विधिपूर्वक उपासना कर गृहस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन पाँच महायज्ञों[12] का अनुष्ठान करना चाहिये॥३८॥ शास्त्रोक्त क्रम से देवताओं और

---

१०. यहाँ निगम शब्द वैदिक वाङ्मय और आगम शब्द शैवागमों का निदर्शक है।

११. वैदिक और तान्त्रिक भेद से सन्ध्याओं के दो प्रकार यहाँ निर्दिष्ट हैं। शैवागमों के अनुयायियों के लिये इन दोनों की उपासना विहित है।

१२. मनुस्मृति (३.७०-७२) में प्रदर्शित पंचयज्ञों से यद्यपि वीरशैवों के पंचयज्ञ विलक्षण हैं, सिद्धान्तशिखामणि (९.२१-२४) में उनका शिवयज्ञ के रूप में वर्णन किया गया है, तथापि आगे के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ मनुस्मृति में प्रतिपादित पंचयज्ञों का ही विधान किया गया है।

देवान् ऋषींस्तद्गणांश्च तर्पयित्वा यथाक्रमम् ।
पितॄन् दिव्यानदिव्यांश्च तर्पयेत् पितृतीर्थतः ।
वैश्वदेवं तु निर्वर्त्य पूजां माध्याह्निकीं चरेत् ॥३९॥

मध्याह्नपूजाभेदाः

महतीं वा गुरुं वापि लघ्वीं वा यतचेतनः ।
कालेषु षट्सु पूज्योऽहं त्रिसन्ध्यमथवा पुनः ॥४०॥
अभोजने विनिर्दिष्टाऽवसरा त्वन्यदा परा ।
षट्स्थलोक्तविधानेन महापूजां समाचरेत् ॥४१॥
भस्मशय्याञ्चिते वामकरपीठेऽभिमन्त्रिते ।
इष्टलिङ्गं सुविन्यस्य उत्तरास्याभिसम्मुखः ।
पूजयेद् अवधानेन भावनापूर्णसाधनः ॥४२॥

ऋषिगणों का तर्पण कर दिव्य और अदिव्य पितरों का भी [13]पितृतीर्थ से तर्पण करना चाहिये। इसके बाद [14]वैश्वदेव की विधि को सम्पन्न कर मध्याह्न की पूजा पूरी करनी चाहिये ॥३९॥

महती, गुर्वी और लघ्वी के भेद से त्रिविध पूजा मानी गई है। संयत चित्त से इनका यथेष्ट अनुष्ठान करना चाहिये। शास्त्रनिर्दिष्ट षड्विध[15] कालों में अथवा तीनों सन्ध्याओं में मेरी पूजा करनी चाहिये ॥४०॥ भोजन न करने पर अवसरा और करने पर अनवसरा पूजा विहित है। शिवभक्त षट्स्थल में बताये गये विधान के अनुसार महापूजा भी करे ॥४१॥ भस्म की शय्या बनाकर अभिमन्त्रित वाम करपीठ में इष्टलिंग का विन्यास कर उत्तर दिशा में मुँह करके सावधानी पूर्वक भावना से परिपूर्ण होकर पूजन करना चाहिये ॥४२॥ पूजा के अन्त में आये अतिथि का, चाहे वह विद्वान् हो या मूर्ख, उसे

---

१३. "अङ्गुल्यग्रे तीर्थं दैवं स्वल्पाङ्गुल्योर्मूले कायम्। मध्येऽङ्गुष्ठाङ्गुल्योः पित्र्यं मूले त्वङ्गुष्ठस्य ब्राह्मम् ॥" (२.६.५०) अमरकोश के इस श्लोक में बताया गया है कि अंगुलियों के अग्र भाग में दैव तीर्थ, छोटी अंगुली के मूल में काय तीर्थ, अंगुष्ठ और तर्जनी के बीच में पित्र्य तीर्थ और अंगुष्ठ के मूल में ब्राह्म तीर्थ स्थित है। दैव तीर्थ से देवताओं का, काय तीर्थ से ऋषि-मुनियों का और पितृ तीर्थ से पितरों का तर्पण किया जाता है। आचमन के लिये ब्राह्म तीर्थ का उपयोग किया जाता है।

१४. वैश्वदेव कर्म के द्वारा विश्वेदेवों को बलि दी जाती है।

१५. चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद (११.६४) में अरुणोदय, सूर्योदय, संगव, मध्याह्न, सायाह्न और अर्धरात्रि – इन छः कालों में अहोरात्र को विभक्त किया गया है।

पण्डितं वाऽथ मूर्खं वाऽतिथिं पूजान्त आगतम् ।
मामेव मत्वा सम्पूज्य तोषयेन्मतिमान् नरः ॥४३॥
भुञ्जानोऽपि हि मां ध्यायेद् वाचा संकीर्तयेदपि ।
न विद्यते तदाशौचं पवित्रः सर्वदाऽस्म्यहम् ॥४४॥
उपभुज्य प्रसादं मे ततो माहेश्वरोऽन्वहम् ।
मुखं करं च प्रक्षाल्य द्विराचम्येक्षणे स्पृशेत् ॥४५॥
स्तोत्राण्यपि पठन्नेवं तदन्नं परिणामयेत् ।
ततश्चासायमपि च साधयेदर्थमात्मनः ॥४६॥

सायंसन्ध्योपासनम्

निर्वर्त्य स्नानमाग्नेयं सायं तु प्रयतः शुचिः ।
उपास्य पश्चिमे सन्ध्ये होमकार्यं विधाय च ॥४७॥
सायन्तनीमवसरां वैश्वदेवं समाचरेत् ।
अथार्धरात्रिकीं पूजां निर्वर्त्यातिथिमर्चयेत् ॥४८॥

मेरा ही स्वरूप मान कर बुद्धिमान् व्यक्ति को उसका सत्कार करना चाहिये ॥४३॥ भोजन करते समय भी भक्त मेरा ही ध्यान करे। वाणी से मेरा ही कीर्तन करे। इन सब कार्यों के करने वाले को कभी भी आशौच नहीं लगता, क्योंकि मैं तो सदा पवित्र ही रहता हूँ॥४४॥ इस प्रकार मेरे प्रसाद के रूप में भोजन ग्रहण कर तब माहेश्वर भक्त प्रतिदिन हाथ और मुँह धोकर,दो बार आचमन कर दोनों आखों का स्पर्श करे॥४५॥ इसके बाद स्तोत्रपाठ आदि करता हुआ उस भुक्त अन्न का पाचन करे। इसके बाद सायंकाल पर्यन्त अपने लिये अर्थार्जन के लिये उद्योग करे॥४६॥

सायंकाल आग्नेय स्नानविधि को सम्पन्न कर पवित्र हुआ व्यक्ति एकाग्र चित्त से निगम और आगम की पद्धति से द्विविध[१६] सायंकालीन सन्ध्या की उपासना पश्चिमामुख हो कर करे और होमविधि को भी पूरा करे॥४७॥ सायंकालीन अवसरा पूजा को सम्पन्न कर बलि-वैश्वदेव कर्म को पूरा करे। इसके बाद अर्धरात्रि की पूजा का अनुष्ठान कर अतिथि का पूजन करे॥४८॥

---

१६. ऊपर की ग्यारहवीं टिप्पणी देखिये।

रात्रिशयनक्रमः

ततः शय्यां सुखकरीमधिशय्य शुचिस्तु माम् ।
ध्यायन् शयीत च सुखमुत्सृष्टाखिलचिन्तनः ॥४९॥
उक्तं मया कृत्यजातमाह्निकं मत्पदप्रदम् ।
ये नरा नानुतिष्ठन्ति ते यान्ति नरकान् बहून् ॥५०॥

इति श्रीमकुटागमे क्रियापादे आह्निकविधिनिरूपणं नाम
द्वितीयः पटलः ॥२॥

इतना सब कर लेने के उपरान्त सुखदायक शय्या पर विश्राम करना चाहिये और पवित्र मन से मेरा ध्यान करता हुआ साधक सारी चिन्ताओं को छोड़ कर सुखपूर्वक निद्रामग्न होजाय ॥४९॥ हे रुद्र! इस प्रकार मैंने तुमको शिवभक्त के लिये आवश्यक दिन भर के सारे कृत्यों का वर्णन सुना दिया है। इस प्रकार की दिनचर्या बनाने से साधक को शिवपद की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इन सबका अनुष्ठान नहीं करते, वे अनन्त काल तक अनेक प्रकार के नरकों का दुःख भोगते रहते हैं॥५०॥

इस प्रकार मकुटागम के क्रियापाद का आह्निकविधि का निरूपण करने वाला
यह दूसरा पटल समाप्त हुआ॥२॥

★

तृतीयः पटलः

रुद्र उवाच

अप्रमेयगुणाधार जगदाधार शाश्वत ।
अर्चाविशेषानधुना निबोधय महागुरो ॥१॥

परशिव उवाच

शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि पूजाभेदाननुत्तमान् ।
पूजा हि त्रिविधा प्रोक्ता गुर्वी च महती लघुः ॥२॥

त्रिविधा पूजा

महतीमुत्तमः कुर्याद् गुर्वीं मध्यम एव च ।
लघ्वीमशक्तः कुर्याच्च सायंमध्याह्नकालयोः ॥३॥
अभोजने ह्यवसरा नियता प्रातरादिषु ।
षट्कालमर्चनां कुर्यात् त्रिकालमथवा बुधः ॥४॥

मण्डलविधानम्

पद्मं त्ववसराख्यायां नवपद्मं लघौ स्मृतम् ।
गुर्व्यां महत्यामपि च भद्रं तत्त्वं हि मण्डलम् ॥५॥

रुद्रदेव प्रश्न करते हैं —

हे अप्रमेय गुणों के आधार, जगत् के आधार, शाश्वत महागुरो! अब मुझे आप पूजा की विशेष विधियों को बताइये ॥१॥

परशिव उत्तर देते हैं —

हे रुद्र! तुम पूजा के श्रेष्ठ भेदों को सुनो, उनका मैं वर्णन करूँगा। महती, गुर्वी और लघ्वी के भेद से यह पूजा तीन प्रकार की कही गई है ॥२॥

उत्तम व्यक्ति महती पूजा करे और मध्यम व्यक्ति गुर्वी पूजा को। इसी तरह से अशक्त व्यक्ति लघ्वी पूजा करे। सायंकाल और मध्याह्न में इनका अनुष्ठान करना चाहिये ॥३॥ बिना भोजन किये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल आदि में अवसरा नाम की पूजा नियत है। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह छः [1]कालों में अथवा तीन कालों में अर्चना करे ॥४॥

अवसरा पूजा में [2]पद्ममण्डल, लघ्वी पूजा में नवपद्ममण्डल, गुर्वी में भद्रमण्डल और महती पूजा में तत्त्वमण्डल का निर्माण किया जाता है ॥५॥

---

१. द्वितीय पटल की १५ वीं टिप्पणी देखिये।

२. इन मण्डलों का स्वरूप कारणागम (४.१७-२६) में बताया गया है।

वर्तिकासंख्या

तिस्रस्त्ववसरायां स्युर्वर्तिका विहिताः किल ।
लघ्व्यां नव द्वादश वा ताः पुनः सम्प्रकीर्तिताः ।
षट्त्रिंशदष्टादश वा गुर्वर्चायां समीरिताः ॥६॥
अष्टोत्तरशतं वापि त्रिशतं वा सहस्रकम् ।
गुर्व्यां महत्यामपि च वर्तिका ज्वालयेदपि ॥७॥

दीपाराधनम्

लघ्व्यामवसरायां वा दीप एकः समीरितः ।
चत्वारो वा तथा द्वौ वा महत्यां च गुरावपि ॥८॥

जपसंख्याविधानम्

लघ्व्यामवसरायां चाप्यष्टोत्तरशतं जपेत् ।
गुर्व्यां महत्यामपि च मूलं दशशतं जपेत् ॥९॥

नीराजनम्

दर्शनं त्ववसराभिख्यमुत्तराभिख्यमित्यपि ।
नीराजनत्रयं प्रोक्तमवसरायां महामते ॥१०॥
दर्शनाख्यावसराख्यं मज्जनाभिख्यमित्यपि ।
माङ्गल्याख्यं च कर्पूरं शृङ्गाराख्यं महाभिधम् ॥११॥

अवसरा पूजा में तीन दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं। लघ्वी पूजा में नौ अथवा बारह दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं। इसी तरह से गुर्वी पूजा में छत्तीस अथवा अठारह दीपक विहित हैं॥६॥ गुर्वी और महती पूजा में एक सौ आठ, तीन सौ अथवा एक हजार दीपकों को प्रज्वलित करने का भी विधान है॥७॥

लघ्वी अथवा अवसरा पूजा में एक ही दीपक विहित है। इसी तरह से महती और गुर्वी पूजा में चार अथवा दो दीपक प्रज्वलित करना उचित है॥८॥

लघ्वी और अवसरा पूजा के अवसर पर मूल पंचाक्षर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इसी तरह से गुर्वी और महती पूजा में मूल (पंचाक्षर) मन्त्र का एक हजार बार जप करे॥९॥

हे महामते! अवसरा पूजा में तीन प्रकार की आरती विहित है। उनके नाम ये हैं—दर्शन, अवसरा और उत्तरा॥१०॥ लघ्वी पूजा में नौ प्रकार का नीराजन (आरती) किया जाता है। उनके नाम इस प्रकार हैं—दर्शनाख्य, अवसराख्य, मज्जनाख्य, मंगलाख्य, कर्पूर, शृंगार, महानीराजन, आनन्दाख्य और असंख्यात ॥११-१२॥

आनन्दाख्यमसंख्यातं नवनीराजनानि तु ।
लघ्वर्चनायामेतानि कीर्तितानि भवन्ति हि ॥१२॥
सानुरागं च ताम्बूलाभिख्यं पूर्वोदितैः सह ।
एकादश महत्यां च गुर्व्यां नीराजनानि हि ॥१३॥
अप्रदीप्यैव दीपं तु न च संकल्पमाचरेत् ।
रङ्गवल्लीं प्रदीपं च गन्धाद्यैरभिपूजयेत् ॥१४॥

नैवेद्यम्

अवसरायामवसरं निवेद्यं सम्प्रकीर्तितम् ।
महानिवेदनं कार्यं लघ्व्यादिषु महामते ॥१५॥
महानिवेद्यं तत्प्रोक्तं क्षुच्छान्तिकरणक्षमम् ।
निवेद्यमवसरं तद्धि क्षुच्छान्त्यनुपयोगि यत् ॥१६॥

इति श्रीमकुटागमे क्रियापादेऽर्चाविशेषविधिनिरूपणं नाम
तृतीयः पटलः ॥३॥

महती और गुर्वी पूजा में ग्यारह प्रकार के नीराजन विहित हैं। ऊपर वर्णित नौ नीराजनों के साथ सानुराग और ताम्बूल नीराजन को मिलाने पर नीराजनों की संख्या ग्यारह हो जाती है ॥१३॥ दीपक को बिना जलाये संकल्प नहीं करना चाहिये। साथ ही रंगवल्ली और दीपक का गन्ध आदि से पूजन करना चाहिये ॥१४॥

अवसरा पूजा में अवसर नाम का ही संक्षिप्त नैवेद्य रहना चाहिये। लघ्वी आदि पूजा के अवसरों पर हे महामते! महानैवेद्य अर्पित करना चाहिये ॥१५॥ महानैवेद्य उसे कहते हैं, जो कि क्षुधा की शान्ति करने में समर्थ हो और अवसर नाम का नैवेद्य उसे कहते हैं, जिसका कि प्रयोजन क्षुधा की शान्ति न हो ॥१६॥

इस प्रकार मकुटागम के क्रियापाद में अर्चा की विशेष विधियों का
निरूपण करने वाला यह तृतीय पटल समाप्त हुआ ॥३॥

☆

चतुर्थः पटलः

रुद्र उवाच

अचिन्त्यमहिमाधार कृपाकूपार शङ्कर ।
पूजोपयुक्तद्रव्याणां साधनं ब्रूहि मेऽधुना ॥१॥

परशिव उवाच

पञ्चामृतादिनाऽभिषेकः कर्तव्यः

मधु गव्यं दधि क्षीरं घृतं शर्करया समम् ।
अभिषेकाय शस्तं स्याच्छुद्धोदकमनुत्तमम् ॥२॥
एलोशीरलवङ्गानि कस्तूरी चन्द्रकं तथा ।
पञ्चद्रव्याणि वा चन्द्रं कस्तूरी कुङ्कुमं तु वा ।
अभिषेकजले योज्यमेलोशीरयुगं तु वा ॥३॥

चन्दनम्

रोचनं कुङ्कुमं चैला कर्पूरं कोष्ठमेव च ।
कृष्णागरुश्च कस्तूरी समचन्दनसंयुतम् ॥४॥

रुद्रदेव प्रश्न करते हैं —

हे अचिन्त्य महिमा के आधार, कृपा के समुद्र शंकर ! मुझे अब आप पूजा के उपयोगी साधनों को बताइये ॥१॥

परशिव उत्तर देते हैं —

मधु (शहद), गाय के दूध, दही और घृत के साथ चीनी के मिलाने से बना पंचामृत और शुद्धोदक – ये दोनों अभिषेक के लिये प्रशस्त माने जाते हैं ॥२॥ इलायची, उशीर (खश), लवंग, कस्तूरी और कपूर – इन पांच द्रव्यों को अभिषेक जल में मिलाना चाहिये, अथवा पक्षान्तर में कपूर, कस्तूरी और कुंकुम–इन तीन द्रव्यों को अथवा इलायची और उशीर इन दो द्रव्यों को ही अभिषेक जल में मिलाया जा सकता है ॥३॥

रोचना (गोलोचन) कुंकुम, इलायची, कपूर, कोष्ठ, काला अगरु (अगर) और कस्तूरी को चन्दन के साथ मिलाकर बनाया गया लेप, विल्व फल का गूदा, कृतमाल (सोनालु, धनवहेढ) का गूदा अथवा देवदार का गूदा–इन सबका गन्ध (चन्दन) मुझे अतिप्रिय है ॥४-५॥

क्षोदो वा विल्वखण्डस्य कृतमालस्य वा तथा ।
गन्धो वा देवदारोश्च मम प्रियकराः स्मृताः ॥५॥

पुष्पाणि

द्रोणं बकं च पुन्नागं तथा मन्दारपुष्पकम् ।
नन्द्यावर्तं श्रियावर्तं करवीरार्कके तथा ॥६॥
शतपत्रं कुवलयं लोध्रं धत्तूरमेव च ।
पाटलं चम्पकं विल्वं तमालं कर्णिकारकम् ॥७॥
मातुलुङ्गमुनी चैव प्रियङ्गुर्देवदारुकम् ।
कृतमालाग्निमन्थौ च मालती मल्लिका तथा ॥८॥
निर्गुण्डी च विकर्णी च बहुपर्णी तथाऽजिता ।
कह्लारमतसीपुष्पं कुसुम्भं कमलं तथा ।
शस्तानि मम पूजायां तस्मात् तैर्मां सुपूजयेत् ॥९॥

सात्त्विक-राजस-तामसपुष्पाणि

शुभ्रवर्णानि पुष्पाणि सात्त्विकानि भवन्ति हि ।
तानि मुक्तिप्रदानि स्युर्भक्तानां मत्समर्पणात् ॥१०॥
राजसान्यरुणान्येवं प्रदद्युर्भोगमीप्सितम् ।
मिश्राणि पीतवर्णानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि ।
पुत्रपौत्रसुवर्णादिसर्वाभीष्टप्रदानि च ॥११॥

द्रोण (सफेद फूलों वाला वृक्ष), बकुल, पुन्नाग, मन्दार, नन्द्यावर्त, श्रियावर्त, करवीर (कनेर) और अर्क (आक) के पुष्प ॥६॥ शतपत्र (कमल), कुवलय (उत्पल), लोध्र, धतूरा, पाटल, चम्पक, विल्वपत्र, तमाल और कर्णिकार (कठचम्पा) ॥७॥ मातुलुंग, मुनि, प्रियंगु, देवदारु, कृतमाल, अग्निमन्थ, मालती और मल्लिका पुष्प ॥८॥ निर्गुंडी, विकर्णी, बहुपर्णी, अजिता, कल्हार, अतसी पुष्प, कुसुम्भ, कमल – ये सब पुष्प मेरी पूजा के लिये प्रशस्त माने गये हैं। अतः इनसे मेरी पूजा करे ॥९॥

शुभ्र वर्ण के पुष्प सात्त्विक माने ज़ाते हैं। इनसे मेरी पूजा करने पर भक्तों के लिये ये मुक्तिप्रद होते हैं ॥१०॥ लाल वर्ण के राजस पुष्प अभीष्ट भोगों को देने वाले होते हैं। मिश्र वर्ण के और पीत वर्ण के पुष्प मुक्ति और भुक्ति दोनों को देते हैं। साथ ही पुत्र, पौत्र, सुवर्ण आदि सभी अभीष्ट वस्तुओं के भी ये प्रदाता हैं ॥११॥ नीलोत्पल

कृष्णानि तामसानि स्युर्विना नीलोत्पलं भुवि ।
वर्जनीयानि यत्नेन न तैर्मामर्चयेज्जनः ॥१२॥

कालभेदेन प्रशस्तानि पुष्पाणि

नन्द्यावर्तं श्रियावर्तं श्वेतार्कं श्वेतपङ्कजम् ।
लक्ष्मीपाटलपुन्नागा मालती शङ्खिनी तथा ॥१३॥
पलाशाशोकबकुलरक्तागस्त्यसुमानि च ।
प्रातःकालिकपूजायां प्रशस्तानि भवन्ति हि ॥१४॥
कृतमालं च धत्तूरं करवीरं च द्रोणकम् ।
चम्पकं पाटलं चैव कमलं चोत्पलं तथा ।
मध्याह्नकालपूजायां प्रशस्तानि स्मृतानि हि ॥१५॥
जातिर्नीलोत्पलं चैव कदम्बं केतकी तथा ।
स्थलपद्मं च पूगं च नागदन्तिसुमं तथा ।
अर्धरात्रिकपूजायां प्रशस्तानि भवन्ति हि ॥१६॥
कनकं च कदम्बं च केतकी जातिरेव च ।
अर्धरात्रेऽर्पणीयानि नान्यथा भक्तितत्परैः ॥१७॥
पारिजातं प्रातरेव सायं स्याच्चन्द्रकान्तकम् ।
मध्याह्न एव युक्ता स्यान्नित्यं मध्याह्नमल्लिका ॥१८॥

को छोड़कर बाकी सब कृष्ण वर्ण के पुष्प राजस कहे गये हैं। पूजा में इनका उपयोग यत्नपूर्वक नहीं करना चाहिये। पूजक को चाहिये कि वह इनसे मेरी पूजा कभी न करें ॥१२॥

नन्द्यावर्त, श्रियावर्त, श्वेत अर्क, श्वेत कमल, लक्ष्मी पाटल, पुंनाग, मालती और शंखिनी, पलाश, अशोक, बकुल और रक्त अगस्त्य का पुष्प – ये सब प्रातःकालीन पूजा के लिये प्रशस्त होते हैं ॥१३-१४॥ कृतमाल, धतूरा, करवीर, द्रोण, चम्पक, पाटल, कमल तथा उत्पल – ये सब पुष्प मध्याह्न काल की पूजा के लिये प्रशस्त माने गये हैं ॥१५॥ जाति, नीलकमल, कदम्ब, केतकी, स्थलपद्म, पूग और नागदन्ती का पुष्प – ये सब अर्धरात्रि की पूजा के लिये प्रशस्त पुष्प हैं ॥१६॥ कनक, कदम्ब, केतकी और जातिपुष्प को अर्धरात्रि की पूजा में ही भक्तियुक्त मनुष्य अर्पित करें, अन्य काल में नहीं ॥१७॥ पारिजात पुष्प का प्रातःकालीन पूजा में, चन्द्रकान्त का सायंकालीन पूजा में और मल्लिका का मध्याह्न की पूजा में नित्य उपयोग करना चाहिये ॥१८॥ त्रिकाल मल्लिका,

त्रिकालमल्लिका चैव कनकाम्बरमेव च ।
द्रोणं च विल्वपत्रं च प्रशस्तानि हि सर्वदा ॥१९॥

वर्ज्यानि ग्राह्याणि च पुष्पाणि

यूथिका मदयन्ती च माधवी च शिरीषकम् ।
बन्धूकं सर्जकं चैव विभीतं कुन्दमेव च ॥२०॥
लाङ्गली दाडिमं दीप्तं निम्बं कार्पासमेव च ।
कूष्माण्डं शाल्मली चैव मत्स्याक्षी शिग्रुपुष्पकम् ॥२१॥
श्रीकर्णं च कपित्थं च तिन्त्रिणीकुसुमं तथा ।
सर्वदा वर्जनीयानि मदनुग्रहकाङ्क्षिभिः ॥२२॥
विल्वारग्वधदूर्वापामार्गं चम्पकपत्रकम् ।
जम्बूकदम्बदमनद्रोणमरुवकपत्रकम् ॥२३॥
शङ्खिनीपद्महीबेरसिन्धुवारादिपत्रकम् ।
शस्तं स्यान्मम पूजायामेतैर्मां सम्यगर्चयेत् ॥२४॥
विल्वपत्रं तु कथितं सर्वपत्रोत्तमोत्तमम् ।
नीलोत्पलं च पुष्पेषु करवीरं विशिष्यते ॥
द्रोणमारग्वधं चैव सर्वपुष्पोत्तमोत्तमम् ॥२५॥

कनकाम्बर, द्रोण और विल्वपत्र – ये सब पूजा के लिये सदा प्रशस्त माने गये हैं ॥१९॥

यूथिका, मदयन्ती, माधवी, शिरीष, बन्धूक, सर्जक, विभीतक और कुन्द पुष्प ॥२०॥ लांगली, दाडिम, दीप्त, निम्ब, कार्पास, कूष्माण्ड, शाल्मली, मत्स्याक्षी और शिग्रु पुष्प ॥२१॥ मेरा अनुग्रह चाहने वाले भक्तों को इस सबका श्रीकर्ण, कपित्थ और तिन्तिणी पुष्प के साथ सदा के लिये त्याग करना चाहिये ॥२२॥ विल्व, आरग्वध, दूर्वा, अपामार्ग और चम्पक पत्र; जम्बू, कदम्ब, दमनक, द्रोण और मरुवक पत्र; शंखिनी, पद्म, ह्रीबेर और सिन्धुवार का पत्र मेरी पूजा के लिये प्रशस्त हैं। इनसे मेरी भलीभांति पूजा करनी चाहिये ॥२३-२४॥ सभी प्रकार के पत्रों में विल्वपत्र सर्वोत्तम माना गया है। इसी तरह से नीलोत्पल और करवीर पुष्पों में विशिष्ट माने जाते हैं, द्रोण और आरग्वध का पुष्पों में सर्वोत्तम स्थान हैं ॥२५॥

सौवर्णानि पत्रपुष्पाणि

पुष्पपत्रैस्तु सौवर्णैरष्टोत्तरशतेन वा ।
पञ्चाशता वा सम्पूज्य चानन्तफलमश्नुते ॥२६॥
नास्ति निर्माल्यतादोषः सौवर्णेषु सुमेष्वपि ।
पत्रेषु च ततस्तैस्तु भक्तो नित्यं समर्चयेत् ॥२७॥
सौवर्णपत्रपुष्पाणां तथा विल्वदलस्य च ।
न पर्युषितता तस्मात् तानि संगृह्य पूजयेत् ॥२८॥

विविधधूपसम्पादनम्

धूपसम्पादनं वक्ष्ये शृणुष्वावहितः पुनः ।
कर्पूरागरुतक्कोलजातीफललवङ्गकम् ॥२९॥
जटामांसी च सिंही च मुस्ता चन्दनमेव च ।
घृतमिश्रमिदं प्रोक्तं दशाङ्गं सुमनोहरम् ॥३०॥
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरं कुङ्कुमं तथा ।
तक्कोलैला नागपुष्पं लवङ्गत्वक् तथैव च ।
यक्षकर्दममेतद्धि मम प्रीतिकरं स्मृतम् ॥३१॥
चन्दनागरुकर्पूरलवङ्गत्वक् च सिंहकम् ।
एला तथा जटामांसी प्राजापत्याभिधं स्मृतम् ॥३२॥

एक सौ आठ अथवा पचास सुवर्ण निर्मित पत्र अथवा पुष्प से पूजा करके शिवभक्त अनन्त फल का भागी होता है ॥२६॥ सुवर्णनिर्मित पत्र अथवा पुष्प में निर्माल्य जनित दोष नहीं लगता। अतः भक्त को चाहिये कि वह इनसे मेरी नित्य पूजा करे ॥२७॥ सुवर्णनिर्मित पत्र और पुष्प एवं विल्वदल कभी पर्युषित (वासी) नहीं होते, इसलिये इनका पुनः संग्रह करके, अर्थात् एक बार चढाये गये विल्वपत्र आदि को जल से धोकर पुनः पूजा में उपयोग किया जा सकता है ॥२८॥

अब मैं तुम्हें धूप बनाने की विधि बताता हूँ। उसे तुम पुनः सावधानी से सुनो। कपूर, अगरु, तक्कोल, जातीफल, लवंग, जटामांसी, सिंही, मुस्ता और चन्दन में घृत मिलाने से सुवासित दशांग धूप तैयार होता है ॥२९-३०॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, कुंकुम, तक्कोल, एला, नागपुष्प, लवंग और दालचीनी – इन सबको मिलाने से यक्षकर्दम नाम का धूप तैयार होता है, जो कि मुझे बहुत प्रिय है ॥३१॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, लवंग, दालचीनी, सिंह, एला और जटामांसी से बना हुआ धूप प्राजापत्य नाम से प्रसिद्ध है ॥३२॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी, तिलक, लवंग, हसिता और मुस्ता

चन्दनागरुकर्पूरं कस्तूरतिलकं तथा ।
लवङ्गं हसिता मुस्ता विजयाख्यं प्रकीर्तितम् ॥३३॥
कर्पूरकृष्णागरु च ह्रीबेरं कुङ्कुमं तथा ।
कोष्ठं तथा चन्दनं च क्रमवृद्धियुतं यथा ॥३४॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भागं मधुमिश्रितम् ।
शीतारिसंज्ञितमिदं मम प्रीतिकरं स्मृतम् ॥३५॥
चन्दनागरुकर्पूरसिंहीसर्जरसांस्तथा ।
कोष्ठं मुस्तां च सञ्चूर्ण्य विजयाख्येन योजितम् ।
कर्पूरकल्याणमिति कीर्तितं मुक्तिसाधनम् ॥३६॥
चन्दनागरुकस्तूरीमुस्तासिंहकचूर्णकम् ।
अमृताख्यमिति प्रोक्तममृतत्वप्रदायकम् ॥३७॥
तक्कोलपूगकर्पूरजातीफललवङ्गकम् ।
सुगन्धसंज्ञितमिदं भोगमोक्षप्रदं मतम् ॥३८॥
गुग्गुलुः केवलं सप्तजन्मपापविनाशकः
तथा चन्दनधूपोऽपि सर्वाघौघनिषूदनः ।
एवं सौगन्धिको धूपः सर्वकामार्थसाधकः ॥३९॥

के योग से बना धूप विजय को देने वाला है ॥३३॥ कर्पूर, कृष्णागरु, ह्रीबेर, कुंकुम, कोष्ठ और चन्दन की क्रमशः वृद्धि करते हुए एक, दो, तीन बार, पाँच और छः गुना लेकर मधु से मिश्रित करने पर यह शीतारि संज्ञक धूप तैयार होती है, जो कि मुझे बहुत प्रिय है ॥३४-३५॥ चन्दन, अगरु, कर्पूर, सिंही और सर्जरस के साथ कोष्ठ और मुस्ता को चूर कर विजयाख्य धूप के साथ उसे मिला दे, तो यह कर्पूरकल्याण के नाम से प्रसिद्ध धूप मुक्ति का साधन मानी जाती है ॥३६॥ चन्दन, अगरु, कस्तूरी, मुस्ता, सिंहक चूर्ण को मिलाकर बनाया गया धूप अमृत नाम से प्रसिद्ध है। यह अमृतत्व को प्रदान करने वाला है ॥३७॥ तक्कोल, पूग, कर्पूर, जातीफल और लवंग के मिश्रण से बना सुगन्ध नाम वाला धूप भोग और मोक्ष का प्रदाता माना गया है ॥३८॥ अकेला गुग्गुलु का धूप ही सात जन्म के पापों को नष्ट कर डालता है। इसी तरह से चन्दन से बना धूप भी सभी पापसमूहों का नष्ट कर डालने में समर्थ है। सौगन्धिक धूप भी काम और अर्थ का साधक माना गया है ॥३९॥ श्वेत अगरु का धूप केवल मुक्ति का प्रदाता है। घृतमिश्रित गुग्गुल का धूप महान् भोगों का साधक है ॥४०॥ तमाल के चूर्ण के

अथ श्वेतागरोर्धूपः केवलं मुक्तिदायकः ।
साज्यगुग्गुलुधूपस्तु महाभोगप्रदायकः ॥४०॥
तमालचूर्णसहितो महिषाक्षस्य धूपकः ।
मम प्रीतिकरस्तस्माद् मत्सायुज्यप्रदायकः ॥४१॥

दीपसम्पादनम्

दीपसम्पादनं वक्ष्ये संश्रृणुष्वावधानतः ।
उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीघृतम् ।
अधमं तिलतैलं स्यादीशस्यान्तकसूदन ॥४२॥
निम्बैरण्डकरञ्जानां तैलं यत्पूतिगन्धि च ।
नोपयोज्यमिदं पुत्र मद्दीपाय कदाचन ॥४३॥
न दीपमप्रज्वाल्यैव शुभकर्म समाचरेत् ।
दैवं पैतृकमप्येवमन्यथा विफलं भवेत् ॥४४॥

पञ्चसूत्रलिङ्गलक्षणम्

शृणुष्वावहितः पुत्र वक्ष्ये लिङ्गस्य लक्षणम् ।

साथ महिषाक्ष से बनी धूप मुझे बहुत प्रिय है। इससे भक्तों को मेरी सायुज्य पदवी प्राप्त होती है॥४१॥

अब मैं तुम्हें दीप-सम्पादन की विधि बताता हूँ। तुम उसे सावधानी से सुनो। हे अन्तकसूदन! भगवान् शिव की पूजा के लिये गाय का घृत उत्तम, भैंस का घृत मध्यम और तिल का तैल अधम माना गया है॥४२॥ हे पुत्र! निम्ब, एरंड, करंज के तैल का और जिसमें दुर्गन्ध आती हो, ऐसे तैल का मेरे पूजन में दीपक जलाने में कभी उपयोग नहीं करना चाहिये॥४३॥ बिना दीपक जलाये किसी भी शुभ कर्म का आरंभ नहीं करना चाहिये। इसी तरह से कोई देवनिमित्तिक अथवा पितृसंबन्धी कार्य भी नहीं करना चाहिये। बिना दीपक जलाये इन सब कार्यों को करने पर सब कुछ निष्फल हो जाता है॥४४॥

हे पुत्र! अब मैं लिंग का लक्षण बताऊँगा। तुम उसे सावधानी से सुनो। [1]स्फटिक शिला आदि के बने हुए शक्ति विशिष्ट लिंगों की पूजा करे। अपने अभीष्ट की सिद्धि के

---

१. "स्फाटिकं शैलजं वापि" (६.२२) सिद्धान्तशिखामणि के इस श्लोक में स्फाटिक, शैलज, चन्द्रकान्तमणि और सूर्यकान्तमणि से बने शिवलिंगों में से किसी एक का ग्रहण करने का विधान है। वहीं (११.३२) पीठिका को शक्ति कहा गया है।

स्फाटिकादीनि लिङ्गानि शक्तियुक्तानि धारयेत् ।
पञ्चसूत्रात्मकं लिङ्गं पूजयेदिष्टसिद्धये ॥४५॥
लिङ्गवृत्तसमं पीठं दीर्घं विस्तारमुन्नतम् ।
तदर्धं गोमुखं चैव पञ्चसूत्रं प्रकीर्तितम् ॥४६॥
शिवाधिक्ये भवेन्मृत्युः शक्त्याधिक्ये धनक्षयः ।
शिवशक्तिसमं लिङ्गं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥४७॥
न न्यूनमर्धाङ्गुलतोऽधिकं नाङ्गुलमानतः ।
पञ्चसूत्रसमायुक्तमिष्टलिङ्गं धरेत् सदा ॥४८॥
इष्टलिङ्गे कलापूर्णे गुरुदत्ते महोत्तमे ।
न लक्षणं परीक्षेत गुरुणा पावितं यतः ॥४९॥

लिये पंचसूत्रात्मक लिंग की पूजा करनी चाहिये ॥४५॥ लिंग की, अर्थात् बाण की गोलाई पीठ की लम्बाई और पीठ के ऊपरी भाग की तथा नीचे के भाग की बराबर माप की चौड़ाई होनी चाहिये। इसी तरह लिंग की गोलाई से आधा माप का गोमुख होना चाहिये। इन्हीं पाँच मापों से बना हुआ लिंग पंचसूत्र लिंग कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि बाण (लिंग) का वर्तुल भाग, पीठ की लम्बाई, पीठ के ऊपरी भाग की चौड़ाई और पीठ के निचले माप की चौड़ाई–इन चारों का माप समान होना चाहिये और गोमुख का माप बाण के वर्तुल भाग से आधा रहना चाहिये। यही पंचसूत्र प्रक्रिया है ॥४६॥ [२]यहां शिव (लिंग) की अधिकता रहने पर पूजक की मृत्यु हो जाती है और शक्ति (पीठ) की अधिकता रहने पर धन का क्षय होता है। अतः लिंग का निर्माण करते समय शिव और शक्ति का माप बराबर रहना चाहिये। ऐसा लिंग भुक्ति और मुक्ति का प्रदाता माना गया है ॥४७॥ लिंग का मान आधा [३]अंगुल से न्यून और एक अंगुल से अधिक नहीं होना चाहिये। साधक को चाहिये कि वह सदा पंचसूत्र प्रमाण के लिंग को ही धारण करे ॥४८॥ गुरु के द्वारा प्रदत्त, सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण, सर्वोत्तम इष्टलिंग को पाकर उसके लक्षणों की परीक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसको तो गुरु ने पवित्र बना दिया है। इसका अभिप्राय यह है कि पंचसूत्र शिवलिंग का ऊपर जो माप बताया गया है, तदनुसार ही इष्टलिंग का निर्माण होना चाहिये। कदाचित् दीक्षा के समय गुरु के करकमलों के द्वारा प्राप्त इष्टलिंग पंचसूत्र प्रमाण का नहीं भी है, तब भी उसमें कोई दोष नहीं माना गया है, क्योंकि गुरु के हस्तस्पर्श से वह सकल कलाओं के परिपूर्ण हो गया है ॥४९॥ भक्त साधक को चाहिये कि वह अपनी शक्ति और

---

२. क्रियासार के "लिङ्गाधिक्ये" (भा० ३, पृ० ४१) इत्यादि श्लोक में यही विषय वर्णित है।
३. अंगुल का प्रमाण आठ यव के बराबर माना गया है।

भक्तः स्वशक्त्यानुगुणार्जितं पुष्पं फलं तथा ।
मनसा सर्वसामग्रीं परिपूर्णां विभावयेत् ॥५०॥
भक्त्यैव परिपूर्णा या सा पूजा सफला भवेत् ।
सर्वमुक्तं समासेन किमतः श्रोतुमिच्छसि ॥५१॥

इति श्रीमकुटागमे क्रियापादे पूजोपकरणसम्पादनं नाम चतुर्थः पटलः ॥४॥

गुण के अनुसार अर्जित पुष्प, फल आदि पूरी सामग्री की परिपूर्णता की अपने मन में भावना करे ॥५०॥ जो पूजा भक्तिभाव से परिपूर्ण है, वही सफल मानी जाती है। इस तरह से मैंने तुमको पूजा का सारा विधान बता दिया है। अब तुम पुनः क्या सुनना चाहते हो ॥५१॥

इस प्रकार मकुटागम के क्रियापाद का पूजा के उपकरणों के सम्पादन की विधि को बताने वाला चतुर्थ पटल समाप्त हुआ ॥४॥

पञ्चमः पटलः

रुद्र उवाच

आवाहनं कथं देव तव सर्वगतस्य तु ।
संस्थापनं कथं नु स्यात् सन्निधानं कथं प्रभो ।
कस्मिन् मुखे समर्प्यं स्यान्नैवेद्यं ते वदस्व मे ॥१॥
अभोज्यं भोज्यमिति च कथ्यते ते निवेदितम् ।
भोज्यं केषामभोज्यं च केषां स्यात् तद्विवेचय ॥२॥

परशिव उवाच

आवाहनम्

देशान्तरप्राप्तिरूपावाहनं व्यापकस्य मे ।
न सम्भवेत् तथापि स्यात् कर्तुर्भावनया परम् ॥३॥
लिङ्गाद्यभिमते देशे यदभिव्यञ्जनं मम ।
तदेवावाहनमिति भावयस्व महामते ॥४॥

संस्थापनम्

लिङ्गबेराद्यभिमतसदाशिवहृदम्बुजे ।
ममावस्थापनं यत्तत् संस्थापनमितीर्यते ॥५॥

रुद्रदेव प्रश्न करते हैं—

हे देव! आप तो सर्वत्र विद्यमान हैं। तब आपका आवाहन कैसे होगा? संस्थापन और संनिधान कैसे होगा? आपके किस मुख में नैवेद्य समर्पित किया जायगा? ये सब बाते आप मुझे समझाकर बताइये॥१॥ आपके लिये निवेदित वस्तु को कुछ लोग अभोज्य और कुछ लोग भोज्य मानते हैं। आप इसका विवेचन कर बताइये कि यह नैवेद्य किसके लिये तो भोज्य है और किसके लिये अभोज्य है॥२॥

परशिव उत्तर देते हैं—

हे महामति रुद्रदेव! सर्वत्र व्यापक होने से मेरा देशान्तरप्राप्ति रूप आवाहन तो संभव नहीं हो सकता, तो भी कर्ता की भावना के अनुसार लिंग, प्रतिमा आदि भक्त के अभीष्ट स्थानों पर मेरी जो अभिव्यक्ति हो जाती है, उसी की तुम आवाहन के रूप में भावना कर सकते हो॥३-४॥

सदाशिव के हृदयकमल के रूप में विद्यमान लिंग, बेर (मूर्ति=प्रतिमा) आदि में जो मेरी स्थापना की जाती है, उसे संस्थापन कहते हैं॥५॥

संनिधान-संनिरोध-अवगुण्ठन-सकलीकरणानि

सन्निधानमिति प्रोक्तमात्मनोऽभिमुखीकृतिः ।
आपूजान्तं सन्निधानप्रार्थनं सन्निरोधनम् ॥६॥
कवचेनाच्छादनं तु यत्तदेवावगुण्ठनम् ।
हृदयादिन्यास एव सकलीकरणं मतम् ॥७॥

अमृतीकरणम्

पञ्चानां हृदयादीनां नानावर्णयुजामपि ।
मद्वर्णतानुसन्धानममृतीकरणं हि तत् ॥८॥

देवस्य कथं कुत्राभिमुखता

स्थण्डिले चरलिङ्गे च साधकाभिमुखोऽस्म्यहम् ।
प्रत्यग्वक्त्रस्तु कुम्भादौ स्थिरे द्वाराभिसम्मुखः ॥९॥

भगवान् शिव को अपने अभिमुख कर लेना संनिधान है। अपने संमुख हुए भगवान् से पूजा पूरी होने तक अपने संमुख रहने की प्रार्थना करना ही संनिरोधन कहलाता है ॥६॥ शिवकवच के पाठ से अपने शरीर का आच्छादन कर रक्षा करना ही अवगुण्ठन कहलाता है। हृदय आदि स्थानों में जो न्यास किया जाता है, उसे ही सकलीकरण कहते हैं ॥७॥

[1]हृदय, शिर, शिखा, कवच और नेत्र—इन पाँच स्थानों के न्यासों के साथ विभिन्न मन्त्राक्षर जुड़े हुए हैं। उन सबमें एकमात्र मेरे ही स्वरूप की भावना करना अमृतीकरण कहलाता है ॥८॥

[2]स्थण्डिल और चरलिंग में मैं सदा साधक के अभिमुख (सामने) रहता हूँ। कुंभ

---

१. द्वितीय पटल की ८ वीं टिप्पणी देखिये। प्रपंचसार (६.६) में इसका विधान है।

२. अमरकोश (२.७.१८) में यज्ञ के निमित्त परिष्कृत की गई भूमि के लिये स्थण्डिल और चत्वर शब्द प्रयुक्त हैं। चत्वर चबूतरे को कहते हैं। 'सती माई का चौरा' यहाँ चौरा शब्द चत्वर के अर्थ में प्रयुक्त है। इस तरह से यज्ञ-याग आदि के लिये परिष्कृत की गई भूमि ही स्थण्डिल है। अभिनव गुप्त ने बाह्य पूजा के प्रसंग में मण्डल, स्थण्डिल, पट, अक्षसूत्र, पुस्तक, लिंग, तूर, पट, पुस्त, प्रतिमा और मूर्ति—इस ११ स्थानों का विधान बताया है (तन्त्रालोक, ६.२-४)। यहाँ जयरथ ने स्थण्डिल का अर्थ याग के लिये परिगृहीत भूप्रदेश, तूर का अर्थ पात्र आदि में उत्कीर्ण आधारविशेष, पुस्त का अर्थ लेप आदि से बनाई गई आकृति और मूर्ति का अर्थ गुरु आदि की आकृति किया है। स्पष्ट है कि प्रतिमा शब्द से यहाँ देवमूर्ति और मूर्ति शब्द से गुरु की प्रतिकृति का ग्रहण किया गया है। इन स्थानों में अपने इष्ट-देव का अर्चन ही याग है। यज्ञ शब्द होम या हवन का वाचक है। इसमें प्रधानतया अग्नि में आहुति दी जाती है।

पञ्चवक्त्रपूजाप्रकारः

प्रपत्तव्यं भोगमोक्षकामैर्मे दक्षिणं मुखम् ।
तस्मात् तदाभिमुख्येन कार्यं हि मम पूजनम् ॥१०॥
बाहुहृद्गुह्यचरणैः साकमूर्ध्वमुखं मम ।
आत्मनोऽभिमुखत्वेन प्रकल्प्यैव समर्चयेत् ॥११॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानादि लेह्यं चोष्यमनेकधा ।
ऊर्ध्ववक्त्रे प्रदातव्यं यत्किञ्चिदिह चोदितम् ॥१२॥

आचारलिङ्गादीनां स्थितिः

पञ्चवक्त्रेषु नैवेद्यस्यार्पणं तद्विशिष्यते ।
सद्योजातः किलाचारो वामदेवो गुरुः स्मृतः ॥१३॥
अघोरस्तु शिवः प्रोक्तश्चरस्तत्पुरुषो भवेत् ।
ईशानस्तु प्रसादः स्याद्विशिष्टस्तु महानहम् ॥१४॥

आदि में पश्चिमाभिमुख मेरी स्थिति रहती है; और स्थिर देवतामूर्ति वाले स्थानो में मैं सदा द्वार के संमुख रहता हूँ॥९॥

भोग और मोक्ष की कामना रखने वाले भक्त को मेरे दक्षिण मुख (अघोर) की शरण में जाना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों को दक्षिण मुख के सामने बैठकर मेरा पूजन करना चाहिये॥१०॥ [३]बाहु, हृदय, गुह्य और चरणों के साथ मेरे ऊर्ध्व मुख को अपने संमुख मान कर उसकी भी भक्तिभावपूर्वक आराधना करनी चाहिये॥११॥ भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान आदि को, इसी तरह से अनेकविध लेह्य और चोष्य द्रव्यों को, जिनका भी भगवान् को भोग लगाने का विधान शास्त्रों में बताया गया है, उन सबको ऊर्ध्व मुख में ही समर्पित करना चाहिये॥१२॥

शिव के पाँचों मुखों को नैवेद्य समर्पित करने की अपनी ही विशिष्ट महिमा है। सद्योजात मुख आचारलिंग स्वरूप, वामदेव गुरुलिंग स्वरूप, अघोर शिवलिंग स्वरूप, तत्पुरुष चरलिंग स्वरूप और ईशान प्रसादलिंग स्वरूप हैं। इन सबसे विलक्षण जो महालिंग है, वह मैं स्वयं ही हूँ॥१३-१४॥

---

३. पंचमन्त्रतनु भगवान् शिव के इन अवयवों का परिचय मृगेन्द्रागम विद्यापाद (३.८-१३) और मतंगपारमेश्वर विद्यापाद (४.१४-१५) में दिया गया है।

प्रसादग्रहणम्

तस्मादनुदिनं भक्तः सर्वं भोज्यं च सर्वदा ।
षड्लिङ्गेभ्यः समर्प्यैव गृह्णीयादवधानतः ॥१५॥

निर्माल्यविचारः

मदीयभुक्तं निर्माल्यं भोज्यं चैव चतुर्विधम् ।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च ददते क्रमात् ॥१६॥
निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं निर्मलत्वादनिन्दितम् ।
तस्मादभोज्यं निर्माल्यमशुद्धैरशिवात्मकैः ॥१७॥
अशुद्धात्मा शुद्धिलोभान्मद्भुक्तं पावनं परम् ।
भक्षयन्नाशमाप्नोति रसभोक्ता यथा द्विजः ॥१८॥
जिह्वाचापल्यसंयुक्तः शैवसंस्कारवर्जितः ।
शैवनिर्माल्यभोजी चेद् रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१९॥
मल्लिङ्गधारिणो लोके देशिका मत्परायणाः ।
मदेकशरणास्तेषु योग्यं नैवान्यजन्तुषु ॥२०॥

इसलिये भक्त को चाहिये कि वह प्रतिदिन ऊपर प्रदर्शित षड्विध लिंग स्वरूप को अर्पित करने के बाद ही स्वयं प्रसाद को सावधानी से ग्रहण करे ॥१५॥

मेरे द्वारा गृहीत नैवेद्य (निर्माल्य), चतुर्विध प्रसाद (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य पदार्थ) क्रमशः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रदान करने वाला है ॥१६॥ निर्माल्य शब्द का अर्थ शैवागम में निर्मल एवं शुद्ध पदार्थ किया जाता है। निर्मल होने से इसकी निन्दा किसी भी रूप में नहीं की जा सकती। यह अतिपवित्र निर्माल्य अशुद्ध और अशिव (अकल्याणकारी, अर्थात् पापी) प्राणियों के लिये सदा अभोज्य ही माना गया है ॥१७॥ अशुद्ध व्यक्ति अपने को शुद्ध बनाने के लोभ का संवरण न कर यदि मेरे परम पवित्र निर्माल्य का भक्षण करना है, तो वह उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे मद्य आदि रसों का भोक्ता ब्राह्मण पतित हो जाता है ॥१८॥ जिह्वा की चपलता के वशीभूत हो शैव संस्कारों से वर्जित व्यक्ति शिवनिर्माल्य का ग्रहण करता है, तो वह अवश्य ही रौरव नरक का भागी होता है ॥१९॥ इसलिये जो व्यक्ति शिवलिंग (इष्टलिंग) को धारण करते हैं, एक मात्र मेरी ही शरण ग्रहण किये हुए हैं और एकमात्र मेरी ही उपासना में लगे हुए हैं, ऐसे देशिकों (आचार्यों) को ही मेरा प्रसाद ग्रहण करना चाहिये, अन्य प्राणियों को नहीं ॥२०॥

चण्डो नाधिकृतः

चण्डभोज्यं दुराधर्षं नान्यभोगाय कल्पितम् ।
बाणलिङ्गे चरे लोहे रत्नलिङ्गे स्वयम्भुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥२१॥

असमर्प्य ग्रहणे दोषः

स्वेष्टलिङ्गे च यद्दत्तं चरुकं तन्न संशयः ।
पत्रं पुष्पं फलं तोयमन्नपानाद्यमौषधम् ।
आपद्यपि न भुञ्जीत यन्मह्यमसमर्पितम् ॥२२॥

निवेदितभोजने सायुज्यप्राप्तिः

मत्पूजापरमो नित्यं मन्निवेदितभोजनः ।
मद्ध्यानपरमो योगी मत्सायुज्याय कल्पते ॥२३॥

इति श्रीमकुटागमे क्रियापादे आवाहनादिविधिकथनं नाम
पञ्चमः पटलः ॥५॥
क्रियापादश्च समाप्तः ॥

---

[४]चण्ड का भोजन बहुत उग्र माना गया है। दूसरों के लिये इसे नहीं दिया जा सकता। किन्तु बाणलिंग, चरलिंग, लोह और रत्ननिर्मित लिंग, स्वयम्भू लिंग तथा सभी प्रकार की प्रतिमा को निवेदित नैवेद्य में चण्ड का अधिकार नहीं माना जाता॥२१॥

अपने इष्टलिंग को समर्पित नैवेद्य यज्ञीय चरु के समान अतिपवित्र माना गया है, इसमें कोई संशय नहीं किया जा सकता। मेरे भक्त को चाहिये कि वह आपत्ति काल में भी पत्र, पुष्प, फल, जल, अन्न, पान, औषध आदि को बिना मुझे समर्पित किये कभी ग्रहण न करे॥२२॥

जो भक्त मेरी पूजा को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है, मुझे नैवेद्य के रूप में समर्पित अन्न आदि का ही भोजन करना है और मेरे ध्यान में ही सदा निमग्न रहता है, ऐसा योगी अवश्य ही मेरी सायुज्य पदवी को प्राप्त करता है॥२३॥

इस प्रकार मकुटागम के क्रियापाद का यह आवाहन आदि की विधियों का वर्णन करने वाला पाँचवां पटल समाप्त हुआ॥५॥
इसके साथ ही क्रियापाद भी समाप्त हुआ॥

★

---

४. चण्डेश का स्वरूप और उसकी पूजा का विधान सोमशम्भुकृत कर्मकाण्डक्रमावली (पृ० ३२-३४) में देखिये। वहाँ बताया गया है कि चण्डेश के निर्माल्य को हटा कर उस स्थान को गोबर से लीप देना चाहिये।

चर्यापादे प्रथमः पटलः

कैलासवासी भगवान् महादेवो महेश्वरः ।
महाकैलासनिलयं महाकारुणिकोत्तमम् ॥१॥
पञ्चपञ्चमुखं देवं पञ्चाशद्भुजमण्डितम् ।
पञ्चब्रह्ममयं शान्तं पञ्चकृत्यपरायणम् ॥२॥
परं शिवं समालोक्य प्रणम्य विनयान्वितः ।
पप्रच्छैवं कृपाविष्टो लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥३॥

रुद्र उवाच

अशेषजगदाधार निराधार परात्पर ।
सर्वतत्त्वादिभूत श्रीदेवदेव नमोऽस्तु ते ॥४॥
श्रीमद्दिव्यागमान्तेषु निगमान्तेषु च स्फुटम् ।
शाम्भवव्रतमादिष्टं भवता शीघ्रमुक्तिदम् ॥५॥

कैलाशवासी महेश्वर भगवान् महादेव महाकैलाश में निवास करने वाले महान् कारुणियों में उत्तम, [1]पचीस मुख और पचास भुजाओं से शोभित, पञ्चब्रह्म मन्त्रस्वरूप परम शान्त अथ च सृष्टि आदि पाँच कृत्यों में सदा लगे रहने वाले परमशिव का दर्शन कर विनयपूर्वक प्रणाम कर करुणा से परिपूरित होकर लोककल्याण की कामना से रुद्र भगवान् परम शिव से इस प्रकार प्रश्न करते हैं॥१-३॥

रुद्रदेव का प्रश्न —

हे समस्त जगत् के आधार स्वरूप अथ च स्वयं निराधार, परात्पर (सर्वतत्त्वातीत), अथ च सभी तत्त्वों के आदिभूत देवाधिदेव! आपको प्रणाम करता हूँ॥४॥ श्रीसम्पन्न दिव्य आगमों के उत्तर भाग में और निगमों के अन्तिम भाग उपनिषद् में आपने स्पष्ट रूप से शीघ्र मुक्ति देने वाले शांभवव्रत का विधान बताया है॥५॥ इष्टलिंगधारी जो

---

१. शैव शास्त्रों में भारतीय वाङ्मय को लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक, अतिमार्ग और मन्त्र नामक पाँच भागों में विभक्त कर पुनः प्रत्येक के पाँच पाँच भेद किये गये हैं। इस तरह से इनकी संख्या पचीस हो जाती है। यहाँ प्रदर्शित शिव के पचीस मुखों से ये शास्त्र निःसृत हुए, ऐसी कल्पना की जा सकती है। इस तरह का ध्यान शास्त्रों में अन्वेषणीय है।

ये द्विजास्तदनुष्ठानतत्परा लिङ्गधारिणः ।
अवसानविधिं ब्रूहि तेषां सद्भक्तियोगिनाम् ॥६॥

परशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स भक्तलोकोद्दिधीर्षुणा ।
शृणु वक्ष्यामि भक्तानामवसानविधिं परम् ॥७॥

शाम्भवव्रतनिष्ठानामवसानविधिः

येनैव संस्कृतः शीघ्रं दीक्षितो मुक्तिमाप्नुयात् ।
येनैव संस्कृतः शीघ्रं दीक्षासाफल्यमश्नुते ।
येनैव संस्कृतो यायादभक्तोऽपि परां गतिम् ॥८॥
शाम्भवव्रतनिष्ठानामिष्टलिङ्गाङ्गसङ्गिनाम् ।
कथितो मत्पदावाप्त्यै शिवमेधविधिः श्रुतौ ॥९॥

द्विज इस शांभवव्रत के अनुष्ठान में सदा लगे रहते हैं, उन सद्भक्ति से सम्पन्न साधकों की अवसानविधि, और्ध्वदेहिक क्रिया की अनुष्ठानपद्धति आप मुझे सुनावें ॥६॥

परशिव का उत्तर —

हे वत्स! भक्त जनों के उद्धार की कामना से तुमने यह अच्छा प्रश्न किया है। भक्तों की और्ध्वदेहिक क्रिया की श्रेष्ठ पद्धति को मैं तुम्हें बताऊँगा। तुम सावधानी से सुनो ॥७॥

इस अवसान विधि से संस्कृत होने पर ही वह शांभव दीक्षा के फल को प्राप्त कर सकता है और इससे संस्कृत भक्तिहीन व्यक्ति भी परम गति को प्राप्त कर लेता है ॥८॥ शांभवव्रत का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले, अपने अंग में सदा इष्ट-लिंग को धारण करने वाले व्यक्तियों के लिये श्रुति में शिव-सामरस्य की प्राप्ति के लिये [२]शिवमेध की विधि वर्णित है ॥९॥

---

२. वैदिक वाङ्मय में प्रसिद्ध पितृमेध कर्म को यहाँ शिवमेध कहा गया है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता के ३५ वें अध्याय में पितृमेध की विधि का वर्णन है। म० म० पी० वी० काणे द्वारा रचित ग्रन्थ "धर्मशास्त्र का इतिहास" (भा० ३, पृ० ११४-११२२) में इसका विस्तृत परिचय दिया गया है।

शिवमेधशब्दनिर्वचनम्

शिवे मयि प्रविष्टानां मेध आराधनात्मकः ।
शिवमेध इति ख्यातः करणीयो मुमुक्षुभिः ।
विशिष्टः पितृमेधोऽयं शिवमेध इति स्मृतः ॥१०॥

भक्तिज्ञानविहीनोऽपि शिवपदं प्राप्नोति

सर्वस्य प्रतिशिवेति भूमिस्तोयस्य इत्यपि ।
श्रुतयो विदधत्येव समाधिं भक्तियोगिनाम् ॥११॥
भक्त्या ज्ञानेन हीनोऽपि युक्तोऽपि महतैनसा ।
सोऽपि मत्पदमागच्छेच्छिवमेधेन संस्कृतः ॥१२॥
मद्भक्तौ च मदर्चायां मज्ज्ञाने शाम्भवव्रते ।
यो मुक्तिसिद्धिं सन्दिग्धे स ध्रुवं नरकं व्रजेत् ॥१३॥
शाम्भवीये व्रते चैव तदन्त्येष्टिविधावपि ।
अविश्वासपरो मूर्खो नरकान्नहि निःसरेत् ॥१४॥

लिङ्गाङ्गिदेहदहने दोषः

शाम्भवव्रतिनो देहं दहेद् यो मूढचेतनः ।
नरके दह्यते सोऽयं सर्वदा यमकिङ्करैः ॥१५॥

शिव-सामरस्य को प्राप्त हुए भक्तों के लिये आराधन रूप कर्म ही शिवमेध कहलाता है। मुमुक्षु जन इसका अवश्य अनुष्ठान करे। पितृमेध का ही यह विशिष्ट स्वरूप शिवमेध के नाम से प्रसिद्ध है ॥१०॥

'सर्वस्य प्रतिशिव' और 'भूमिस्तोयस्य' इस तरह की श्रुतियाँ भक्तिभाव से सम्पन्न योगियों के लिये समाधि बनाने का विधान करती हैं ॥११॥ शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि जो व्यक्ति भक्ति और ज्ञान से शून्य है, महापातकों से घिरा हुआ है, वह भी शिवमेध से संस्कृत होकर शिवसायुज्य को प्राप्त करता है ॥१२॥ मेरी भक्ति करने के बाद, मेरा पूजन करने के बाद, मेरा ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद और शाम्भवव्रत का अनुष्ठान करने के बाद भी जिसके मन में मुक्ति की सिद्धि में सन्देह रह जाता है, वह निश्चित ही नरक में जाता है ॥१३॥ शांभवव्रत में और उसका पालन करने वाले के लिये बताई गई अन्त्येष्टि विधि में जिसका विश्वास नहीं है, ऐसे मूर्ख का नरक से कभी उद्धार नहीं होता ॥१४॥

मद्भक्तानां मुमुक्षूणां संस्कारायैव देहिनाम् ।
पितृमेधे समाख्यातः समाधिविधिरुत्तमः ॥१६॥
नृणां कर्मैकसक्तानां पुनरावृत्तिशालिनाम् ।
दहनोपस्कृतः प्रोक्तो ह्यवसानविधिर्मया ॥१७॥
लिङ्गाङ्गसङ्गिनां वत्स चानावृत्तियुजां सताम् ।
समाध्युपस्कृतः प्रोक्तो ह्यवसानविधिः परः ॥१८॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा ।
चीर्णव्रतो यदि मृतस्तस्य देहं न दाहयेत् ॥१९॥

शाम्भवव्रतनिष्ठानां प्रेतत्वं नास्ति

शाम्भवव्रतनिष्ठानां प्रेतत्वं नहि विद्यते ।
प्रेतत्वेन विमुक्तस्य कर्मलोपो न शङ्क्यते ॥२०॥

अपसव्यादिनिषेधः

लिङ्गभावयुजामेषामपसव्यं न युज्यते ।
अतः प्रेतक्रियाः सर्वाः शाम्भवेषु न योजयेत् ॥२१॥

जो मूढमति शांभवव्रत का पालन करने वाले के देह का दाह-संस्कार करता है, उसे यम के दूत नरक में सदा जलाते रहते हैं ॥१५॥ मुक्ति की कामना वाले मेरे भक्तों के देह का संस्कार करने के लिये ही वैदिक पितृमेध प्रकरण में उत्तम समाधिविधि का वर्णन किया गया है ॥१६॥ सांसारिक कार्यकलाप अथवा कोरे कर्मकाण्ड में लगे रहने वाले जन्ममरण की परम्परा में पड़े हुए व्यक्तियों के लिये ही मैंने दाहसंस्कार प्रधान और्ध्वदैहिक पद्धति का विधान बताया है ॥१७॥ हे वत्स ! अपने शरीर पर सदा इष्टलिंग धारण करने वाले, अत एव पुनर्जन्म को प्राप्त न होने वाले ज्ञानियों के लिये समाधिसंस्कार रूपी श्रेष्ठ अवसान विधि का उपदेश किया गया है ॥१८॥ वह ब्रह्मचारी हो या गृहस्थ, वानप्रस्थ हो अथवा यति, जिस व्यक्ति ने शांभवव्रत का विधिपूर्वक अनुष्ठान किया है, उसका देहावसान होने पर देह का दाह-संस्कार नहीं करना चाहिये ॥१९॥

शांभवव्रत का अनुष्ठान करने वालों को प्रेतयोनि प्राप्त होती ही नहीं। प्रेतभाव से जो मुक्त है, उसके लिये प्रेतकर्म के लोप का प्रश्न ही कहाँ उठता है ॥२०॥

ये शिवभक्त लिंगभाव से सदा संयुक्त रहते हैं, अतः इनको अपसव्य करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसीलिये शांभवव्रत का पालन करने वालों की किसी भी प्रकार की प्रेतक्रिया नहीं की जाती ॥२१॥

वीरशैवानां समाधिसंस्कारः

समाधिर्मोक्षधर्मोऽयं सर्वधर्मापवादकः ।
समाधिसंस्कृते तस्माद्धर्मलोपो न शङ्क्यते ॥२२॥
समाधिसंस्क्रिया साक्षान्मत्सान्निध्यप्रदायिनी ।
दहनं प्रथितं लोके पितृलोकैकसाधकम् ॥२३॥
मदीयभक्तगात्राणां समाधिर्विहितो मया ।
ये त्वविश्वासिनो लोके मदुक्तविधिषु ध्रुवम् ।
न बहिर्निःसरेयुस्ते कदाऽपि नरकार्णवात् ॥२४॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे शाम्भवान्त्येष्टिप्रशंसा नाम प्रथमः पटलः ॥१॥

यहाँ जो समाधि का विधान बताया गया है, वही मोक्षप्राप्ति का श्रेष्ठ धर्म है। यह अन्य सभी धर्मों का बाधक है। इसीलिये जिस शिवभक्त का समाधि-संस्कार किया जाता है, वहाँ धर्म के लोप की कोई शंका ही नहीं उठ सकती ॥२२॥ यह समाधि-संस्कार मेरे सान्निध्य को दिलाने वाला साक्षात् साधन है। लोक में जो दाह-संस्कार की विधि प्रचलित है, वह केवल पितृलोक को ही देने वाली है ॥२३॥ मेरे भक्तों के मृत शरीर का एकमात्र संस्कार मैंने समाधि ही बताया है। मेरे द्वारा बताई गई विधियों में जिनको विश्वास नहीं है, वे व्यक्ति निश्चय ही नरकरूपी सागर से कभी बाहर नहीं निकल सकते ॥२४॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह शांभव जनों की अन्त्येष्टि की प्रशंसा करने वाला पहला पटल पूर्ण हुआ ॥१॥

★

द्वितीयः पटलः

रुद्र उवाच

परमेश्वर सर्वात्मन् सर्वकारण शाश्वत ।
उच्चिक्रमिषुणा सद्यः कर्तव्यं तन्निबोध मे ॥१॥

परशिव उवाच

उच्चिक्रमिषोर्भस्मस्नानादिकम्

उच्चिक्रमिषुराश्वेव मय्यावेशितचेतनः ।
कर्तुं दानादिकं स्नानमाग्नेयादिकमाचरेत् ॥२॥
धृतधौताम्बरो भूम्यामासीनश्च कुशासने ।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्राणि धृत्वा भूत्या यथोदितम् ।
रुद्राक्षान् बिभृयादेव शिरःकण्ठकरादिषु ॥३॥
भस्मरुद्राक्षधारी तु यश्चापि म्रियते यदि ।
सोऽपि रुद्रत्वमाप्नोति किं पुनर्मानुषादयः ॥४॥

भगवान् रुद्र प्रश्न करते हैं—

हे सर्वात्मन्, सभी के कारण, शाश्वत स्वरूप वाले परमेश्वर! जो व्यक्ति इस शरीर को छोड़ कर, प्राणों को त्याग कर उत्क्रमण करना चाहते हैं, उनके लिंये तत्काल क्या करना चाहिये, यह आप मुझे बताइये ॥१॥

भगवान् परशिव उत्तर देते हैं—

मुझमें आसक्त चित्त वाले व्यक्ति के प्राण यदि छूटने वाले हैं; तो उसे दान आदि करने के निमित्त शीघ्र ही आग्नेय आदि स्नानों में से कोई एक स्नान करना चाहिये ॥२॥ धुला हुआ वस्त्र पहिन कर भूमि पर बिछाये गये कुशासन पर बैठ कर भस्म से शास्त्रोक्त विधि के अनुसार स्नान (उद्धूलन)[1] तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। इसके बाद शिर, कण्ठ, हाथ आदि में शास्त्रविहित पद्धति से रुद्राक्षों को धारण करना चाहिये ॥३॥ भस्म और रुद्राक्ष को धारण करने वाला जो कोई भी प्राणी जब कभी मृत्यु को प्राप्त करता है, तो वह अवश्य ही रुद्र की पदवी को पाता है। तब मनुष्य की तो बात ही क्या है? अर्थात् उसको तो अवश्य ही रुद्रत्व प्राप्त होता है ॥४॥ शीघ्र होने वाले

---

१. भसस्नान, भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्र के तथा रुद्राक्ष के धारण की विधि 'अष्टावरण विज्ञान' (पृ० ४०-५७) में देखिये।

उत्क्रान्तिमथ विज्ञाय निमित्तैराशुभाविनीम् ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य याते अग्नेति मन्त्रतः ।
भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् ॥५॥

अविदितकालस्य पुत्रेण दानादिकं कर्तव्यम्

अथाविदितकालः सन् समुत्क्रान्तिं लभेत चेत् ।
तत्पुत्र आशु कुर्वीत आत्मारोपं यथाविधि ॥६॥
आत्मन्यारोपितस्यास्य वह्नेः प्रशमनाय वै ।
षडध्वशुद्धैः कर्तव्यो ह्यप्सु होमस्त्वनन्तरम् ॥७॥
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य होममप्सु विधाय च ।
हिरण्यं च यथाशक्ति दद्याद् गां लिङ्गमेव च ॥८॥
अत्युत्क्रान्तौ प्रवृत्तस्य सुखोत्क्रमणसिद्धये ।
तुभ्यं सम्प्रददे धेनुमिमामुत्क्रान्तिसंज्ञिताम् ॥९॥

प्राणोत्क्रमण के लक्षणों को जान कर [२]'या ते अग्ने' इस मन्त्र से अपनी आत्मा में अग्नियों को समारोपित कर 'अग्निः'[३] इत्यादि मन्त्र से भस्म लेकर अपने सारे अंगों में लगावे ॥५॥

जिसको अपने प्राणोत्क्रमण के काल का ज्ञान नहीं हुआ है और उसकी प्राणोत्क्रान्ति (मृत्यु) हो गई है, ऐसे व्यक्ति के लिये उसका पुत्र विधिपूर्वक अपने में पूर्वोक्त अग्नि-समारोप विधि को करे ॥६॥ अपने में समारोपित इस वह्नि के प्रशमन हेतु षडध्व की शुद्धि करने के उपरान्त जल में होम करना चाहिये ॥७॥ अपने में अग्नियों को समारोपित कर और जल में होमविधि को सम्पन्न कर हिरण्य (सुवर्ण), गाय और लिंग का शक्ति के अनुसार दान करे ॥८॥ प्राणोत्क्रान्ति की इस कठिन वेला में सुख से प्राण निकल सकें, इसके लिये मैं तुम्हारे निमित्त इस उत्क्रान्ति नाम वाली धेनु का दान कर रहा हूँ ॥९॥ पुनरावृत्ति से रहित शिव-सामरस्य की सिद्धि के लिये यह मैं तुम्हारे

---

२. "या ते अग्ने रुद्रिया तनूस्तया नः पाहि। या ते अग्ने दुराशया... तस्यास्ते स्वाहा" (तै० सं० १.२.११.२)।

३. "अग्निरिति भस्म। वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म। स्थलमिति भस्म। व्योमेति भस्म॥" (भस्मजाबालोपनिषद्, १.३)।

पुनरावृत्तिरहितशिवसायुज्यसिद्धये ।
इदं सम्प्रददे तुभ्यं शिवलिङ्गं सुपावनम् ॥१०॥
दानसाद्गुण्यकामेनावश्यं देया सुदक्षिणा ।
हीनं दक्षिणया सर्वं व्यर्थं भवति शङ्कर ॥११॥

लिङ्गदानमहिमा

ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फलं भवतीश्वर ।
तत्फलं समवाप्नोति शिवलिङ्गप्रदानतः ॥१२॥

स्थूलदेहविलापनम्

सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यं नित्यमा प्रायणादपि ।
भावयेदवधानेन शिवसायुज्यसिद्धये ॥१३॥
आयुषः प्राणमित्येवं तत्त्वान्यपि च योजयेत् ।
यथाक्रमं कारणेषु स्थूलदेहं विलापयेत् ॥१४॥
देहच्छिद्राणि गगने श्वसने श्वाससन्ततिम् ।
ऊष्माणं ज्वलने वारिण्यसृक्पूयकफादिकम् ॥१५॥

निमित्त पवित्र शिवलिंग का दान कर रहा हूँ ॥१०॥ दान की परिपूर्णता के लिये दक्षिणा अवश्य देनी चाहिये। हे शंकर! दक्षिणा के बिना किया गया सारा कार्य व्यर्थ चला जाता है ॥११॥

हे ईश्वर! करोड़ों ब्रह्माण्डों के दान से जो फल मिलता है, वह फल एकमात्र शिवलिंग के दान से मिल जाता है ॥१२॥

जब तक शरीर में प्राण है, तब तक शिवभक्त को नित्य ही अपने त्रिविध शरीर और उसके अंगों में सावधानी से आचारलिंग, गुरुलिंग आदि की भावना करनी चाहिये। ऐसा करने से शिव-सामरस्य की प्राप्ति होती है ॥१३॥ [४]'आयुषः प्राणम्' इत्यादि मन्त्र से तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को सम्पन्न करते हुए क्रम के अनुसार अपने-अपने कारणों में स्थूल देह को आगे बताई गई पद्धति से विलीन कर देना चाहिये ॥१४॥ आकाश में शरीर के छिद्रों का, पवन में श्वास-प्रश्वास के प्रवाह का, अग्नि में शरीरगत ऊष्मा (गर्मी) का और जल में रक्त, मवाद, कफ आदि का विलयन करे ॥१५॥ पृथ्वी

---

४. "आयुषः प्राणं संतनु। प्राणादपानं संतनु" (तैत्ति० सं० १.५.७ अनुवाक)।

अस्थिमांसादिकठिनभागान् भूमौ यथोदयम् ।
विलाप्यैवं स्थूलदेहं सूक्ष्मं चापि विलापयेत् ॥१६॥

सूक्ष्मदेहविलापनम्

शूलिन् सूक्ष्मशरीरस्य विलापनमपि शृणु ।
करणप्रेरकत्वेन देवानां तत्र मुख्यताम् ।
आलोक्य तत्रेन्द्रियाणि विषयैः सह योजयेत् ॥१७॥
वक्तव्यसहितां वाचं वह्नाविन्द्रे सशिल्पकौ ।
पाणी विष्णौ पदे गत्या रत्योपस्थं प्रजापतौ ।
पायुं विसर्गसहितं मृत्यौ शर्व विलापयेत् ॥१८॥
दिशासु सह शब्देन श्रोत्रं स्पर्शैः सह त्वचम् ।
वायौ दिनेशे रूपेण चक्षुषि प्रविलापयेत् ॥१९॥
रसेन वरुणे जिह्वां गन्धैर्घ्राणं सहाश्विनोः ।
मन्तव्येन मनश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैश्चतुर्मुखे ।
रुद्रे सहाहङ्कर्तव्यैरहङ्कारं विलापयेत् ॥२०॥

में अस्थि, मांस आदि कठिन भागों का जिस क्रम से उदय हुआ है, उसी पद्धति से प्रविलापन किया जाता है। इस तरह से स्थूल देह का प्रविलापन करने के बाद सूक्ष्म देह का भी विलयन पूरा करना चाहिये ॥१६॥

हे त्रिशूलधारी शंकर! सूक्ष्म शरीर के प्रविलापन की प्रक्रिया को तुम सुनो। इन्द्रियों के प्रेरक के रूप में उस उस इन्द्रिय के अधिष्ठाता देवताओं की प्रमुखता को जान कर उस देवता में ही विषयों के साथ उन-उन इन्द्रियों को विलीन कर दे ॥१७॥ हे शर्व (शिव)! अग्नि में वागिन्द्रिय की अधिष्ठात्री देवता के साथ वागिन्द्रिय (वक्तव्य) को, इन्द्र में सारी शिल्पक्रिया के साथ पाणीन्द्रिय को, विष्णु में गमनक्रिया के साथ पादेन्द्रिय को, प्रजापति में रतिक्रिया के साथ उपस्थेन्द्रिय को और यम में विसर्ग के साथ पायु (गुदा) इन्द्रिय को विलीन कर दे ॥१८॥ दिशाओं में शब्द के साथ श्रोत्रेन्द्रिय को, वायु में स्पर्श के साथ त्वगिन्द्रिय को, सूर्य में रूप के साथ चक्षु इन्द्रिय को विलीन कर देना चहिये ॥१९॥ वरुण में रस के साथ जिह्वेन्द्रिय का, अश्विनीकुमारों में गन्ध के साथ घ्राणेन्द्रिय का, चन्द्रमा में मन्तव्य के साथ मन का, चतुर्मुख ब्रह्मा में बोध्य विषय के साथ बुद्धि का और रुद्र में सारे अहं कर्तव्यों के साथ अहंकार का प्रविलापन करना चाहिये ॥२०॥ क्षेत्रज्ञ में भोक्तृत्व आदि सारे विकारों को विलीन कर देना चाहिये

भोक्तृत्वादिविकाराद्यैः क्षेत्रज्ञे सह योजयेत् ।
चित्तं चेतयितव्यैश्च गुणकार्योक्तदैवतैः ।
विकारवन्तं तमपि मयि ब्रह्मणि योजयेत् ॥२१॥
क्षित्यादिभूताहङ्कारमहदव्यक्तसंज्ञिनाम् ।
विकारहेतुभूतानां स्वस्वहेतौ लयः क्रमात् ॥२२॥

सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यभावनम्

सर्वाङ्गलिङ्गसाहित्यं नित्यमा प्रायणादपि ।
भावयेदवधानेन मम सायुज्यसिद्धये ॥२३॥
सर्वेष्वङ्गेषु सर्वत्र सर्वदा सर्वतोमुखम् ।
लिङ्गं गुरूपदेशेन ज्ञातं यत्तत् प्रकाशते ॥२४॥
एकमेव परं लिङ्गमङ्गेऽस्मिन् सुप्रतिष्ठितम् ।
सर्वतोमुखमाभाति नामरूपक्रियात्मना ॥२५॥

और इसी तरह से गुणों के अधिष्ठाता देवताओं में चित्त को सारे चेतयितव्यों के साथ विलीन कर दे। अन्ततः मेरे ब्रह्म स्वरूप में इस विकारवान् चित्त को भी संयोजित कर देना चाहिये ॥२१॥ विकारस्वरूप, अर्थात् कार्यात्मक पृथिवी आदि पंच महाभूतों की, अहंकार की, महान् की और अव्यक्त की क्रमशः अपने अपने कारणों में विलयन की भावना करनी चाहिये, अर्थात् पंचमहाभूतों की पंचतन्मात्राओं में, पंच-तन्मात्राओं की अहंकार में, अहंकार की महान् में, महान् की अव्यक्त में और अव्यक्त की अक्षर तत्त्व में विलयन की भावना करनी चाहिये ॥२२॥

शिव-सामरस्य की प्राप्ति के लिये शरीर में प्राणों के रहने तक अपने सारे शरीर के साथ लिंग के साहित्य का भाव सावधानी के साथ सुरक्षित रखना चाहिये ॥२३॥ अपने सभी अंगों में सर्वत्र सर्वदा लिंग की स्थिति का ज्ञान गुरु के उपदेश से ही हो पाता है और तभी उसका सर्वतोमुखी भाव प्रकाशित होता है ॥२४॥ इस मनुष्य शरीर में एकमात्र परलिंग ही सर्वत्र सुप्रतिष्ठित है। वही नाम, रूप और क्रिया के रूप में सर्वत्र प्रतिभासित होता रहता है ॥२५॥

इष्टलिङ्गादिभावनम्

इष्टलिङ्गं तु बाह्याङ्गे प्राणलिङ्गं तथान्तरे ।
भावलिङ्गं तथैवास्मिन्नात्माङ्गे सुप्रतिष्ठितम् ॥२६॥
हृदयाङ्गे महालिङ्गं श्रोत्राङ्गे तु प्रसादकम् ।
त्वगङ्गे चरलिङ्गं तु दृगङ्गे शिवलिङ्गकम् ॥२७॥
जिह्वाङ्गे गुरुलिङ्गं तु नासिकाङ्गे तथैव च ।
आचारलिङ्गमश्रान्तं सुप्रतिष्ठितमेव हि ॥२८॥
यथा ज्ञानेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ।
तथा कर्मेन्द्रियाङ्गेषु क्रमाल्लिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥२९॥
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं चेतनावागगोचरम् ।
सर्वशक्त्यपि सर्वज्ञं सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥३०॥

प्रायश्चित्तसमाचरणम्

भावयन्नेति तद्भावं भावपूतेन चेतसा ।
गणानुज्ञां गृहीत्वाऽतः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३१॥

बाह्य अंग, अर्थात् स्थूल शरीर में इष्टलिंग, आन्तर अंग (सूक्ष्म शरीर) में प्राणलिंग और इस आत्मांग, अर्थात् कारण शरीर में भावलिंग सुप्रतिष्ठित है ॥२६॥ हृदयरूपी अंग में महालिंग, श्रोत्र अंग में प्रसादलिंग, त्वग्रूपी अंग में चरलिंग और चक्षुरूपी अंग में शिवलिंग अवस्थित है ॥२७॥ जिह्वारूपी अंग में गुरुलिंग और इसी तरह से नासिका में आचारलिंग अश्रान्त भाव से सदा सुप्रतिष्ठित रहता है ॥२८॥ जैसे ज्ञानेन्द्रिय रूपी अंगों में क्रमानुसार लिंगों की भावना की जाती है, उसी तरह से कर्मेन्द्रिय रूपी अंगों में भी क्रम से लिंगों की भावना करनी चाहिये, अर्थात् वाक्रूपी अंग में प्रसादलिंग की, पाणि में चरलिंग की, पाद अंग में शिवलिंग की, पायु अंग में गुरुलिंग की और उपस्थ अंग में आचार लिंग की भावना करे ॥२९॥ अप्रतर्क्य और अनिर्देश्य, चेतना शक्ति और वाणी के अगोचर, सर्वशक्ति सम्पन्न और सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द लक्षण परलिंग की भावना करने वाला शिव-भक्त शुद्ध भाव के कारण पवित्र हुए चित्त से परलिंग भाव को प्राप्त कर लेता है।

इस स्थिति में भी व्यक्ति शिवगण, अर्थात् जंगमों की अनुज्ञा लेकर अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करे ॥३०-३१॥ अनेक जन्मों के अर्जित महापातक भी गुरु,

सर्वजन्मार्जितानीह पातकानि महान्त्यपि ।
लिङ्गजङ्गमगुर्वङ्घ्रितीर्थप्राशनतस्तथा ।
नश्यन्ति तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा ॥३२॥
महाशैवव्रतस्थानां मद्भक्तानां विशेषतः ।
न निष्कृत्यन्तरं मुख्यं मत्तीर्थप्राशनादृते ॥३३॥
अन्त्यकाले तु यस्याऽऽस्ये दीयते मत्पदोदकम् ।
सोऽपि सद्गतिमाप्नोति यश्चाचारबहिष्कृतः ।
तथा मन्नामधेयानि कीर्तयेदवधानतः ॥३४॥

शिवनामस्मरणम्

शिव शिव शिव चेति व्याहरन् वै त्रिवारं
त्यजति निजतनुं यः स्वायुषोऽन्त्यक्षणेऽस्मिन् ।
भवति भवभयानां छेदकः पूर्वशब्दो
न भवत इतरौ तौ कल्पितात्मोपकारौ ॥३५॥

मरणसमये मन्त्रश्रावणम्

ततश्च कर्णमन्त्राणि श्रावयेयुः सुतादयः ।
षडक्षरं दक्षकर्णे निषदश्चैव शाश्वतीः ॥३६॥

लिंग और जंगम के चरणों के तीर्थ का प्राशन करने से तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रखना चाहिये ॥३२॥ महामहिमाशाली शैवव्रत का आचरण करने वालों के लिये, विशेष कर मेरे भक्तों के लिये मेरे चरणोदक के पान के अतिरिक्त दूसरा कोई मुख्य प्रायश्चित्त नहीं है ॥३३॥ अन्तिम समय में प्राण निकलते समय जिसके मुख में मेरा चरणोदक दिया जाता है, वह व्यक्ति भले ही आचार से वर्जित हो, तो भी सद्गति को प्राप्त करता है। इसी तरह से ऐसे समय में मेरे नामों का कीर्तन भी सावधानी के साथ करना चाहिये ॥३४॥

जो शिवभक्त अपनी आयु के अन्तिम क्षण में तीन बार शिव, शिव, शिव का उच्चारण करते हुए अपने शरीर को छोड़ता है, उसके लिये पहला शब्द ही समस्त सांसारिक भयों का विच्छेद कर डालता है। आगे के दो शब्द तो केवल उसकी आत्मा के उत्कर्ष के कारण बनते हैं ॥३५॥

इतना सब कर लेने के बाद उस शिवभक्त के पुत्र आदि उसके कान में मन्त्रों का

तत उत्क्रान्तिवेलायां कर्पूरं ज्वालयेदपि ।
अणुः पन्थेत्यर्चिरादिगत्यर्थं मन्त्रमुच्चरन् ॥३७॥

*इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे उच्चिक्रमिषुकर्तव्य-
विधिर्नाम द्वितीयः पटलः ॥२॥*

पाठ करें। दाहिनें कान में षडक्षरी मन्त्र और शाश्वत कल्याण देने वाली उपनिषदों को सुनाना चाहिये ॥३६॥ तब प्राण की उत्क्रान्ति के समय 'अणुः पन्थाः'[५] इत्यादि मन्त्र का पाठ करते हुए कर्पूर प्रज्वलित करे, जिससे कि उस शिवभक्त को अर्चिरादि गति प्राप्त हो ॥३७॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह प्राणों की उत्क्रान्ति चाहने वाले शिवभक्त के लिये कर्तव्य विधि का निरूपण करने वाला दूसरा पटल समाप्त हुआ ॥२॥

---

५. अणुः पन्था विततः पुराणो मां स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव।
तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं वियुक्ताः ॥ (बृह० उ० ४.४.८)

तृतीयः पटलः

रुद्र उवाच

विश्वातीत जगद्योने सर्वाधार परात्पर ।
दृष्ट्वोत्क्रान्तिं ततः कर्त्रा किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥१॥

परशिव उवाच

उत्क्रान्तासुं परीक्ष्याथ कर्ता संशुद्धचेतनः ।
स्नात्वा धृतत्रिपुण्ड्रश्च रुद्राक्षसमलङ्कृतः ॥२॥

कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं गणानुज्ञा

कर्माधिकारसिद्ध्यर्थं कृत्वा गणनमस्कृतिम् ।
तदभ्यनुज्ञां गृह्णीयाद् यथाशक्तिप्रदानतः ॥३॥
मृताहदानं तत्सर्वपर्वदानाद् विशिष्यते ।
तद्यथाशक्ति दातव्यं द्रविणं पितृहितैषिणा ॥४॥

रुद्रदेव का प्रश्न —

हे विश्वातीत, जगत् के कारण, सबके आधार, परात्पर परशिव ! उत्क्रान्ति को देख कर उसका संस्कार करने वाले को क्या करना चाहिये, यह आप मुझे बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर —

इसके प्राण निकल गये हैं, इस बात की परीक्षा कर लेने के उपरान्त शुद्ध चित्त से क्रियाकर्म का करने वाला व्यक्ति स्नान करके त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष की माला धारण करे ॥२॥

इसके उत्तर कर्म का अधिकार पाने के लिये वह उपस्थित शिवगण, अर्थात् जंगमों को नमस्कार करे तथा यथाशक्ति दान कर प्रयत्नपूर्वक उनकी अनुज्ञा प्राप्त करे ॥३॥ मृत्यु के समय दिया गया दान अन्य सभी पर्वों में दिये गये दान से विशिष्ट माना जाता है। अतः अपने पिता का हित चाहने वाले को यथा-शक्ति धन का दान करना चाहिये ॥४॥

दोषप्राप्तौ प्रायश्चित्तम्

ऊर्ध्वोच्छिष्टादिसम्प्राप्तौ प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
प्राजापत्यप्रतिनिधिं दद्याद् द्रव्यं यथोदितम् ॥५॥
खट्वायां मरणे प्राप्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ।
गां वा हिरण्यं दद्याच्च तद्दोषविनिवृत्तये ॥६॥
निशि कृष्णे च पक्षे च मरणे दक्षिणायने ।
ताः सूर्या इति वै षड्भिर्हुत्वा कुर्याच्च संस्क्रियाम् ॥७॥

इष्टलिङ्गसंस्कारः

लीनप्राणशरीरं तु श्रीरुद्रेणाभिषिच्य च ।
भस्मरुद्राक्षगन्धाद्यैरलङ्कृत्येष्टलिङ्गकम् ॥८॥
करे निवेश्य सम्पूज्य पेटिकायां निधाय च ।
विमाने तद्वपुः स्थाप्य सर्वमङ्गलनिस्वनैः ॥९॥

ऊर्ध्वोच्छिष्ट[1] आदि दोषों की सम्प्राप्ति होने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये। ऐसे अवसरों पर प्राजापत्य व्रत के प्रतिनिधि के रूप में विहित द्रव्य का दान करना चाहिये ॥५॥ खट्वा पर ही यदि मृत्यु हो जाती है, तो उस स्थिति में भी [2]प्राजापत्य व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। इस दोष की निवृत्ति के लिये गाय का अथवा सुवर्ण का दान भी विहित है ॥६॥ रात्रि में, कृष्ण पक्ष में अथवा दक्षिणायन में मृत्यु होने पर 'ताः सूर्याः' इत्यादि छः ऋचाओं से आहुति देने के उपरान्त मृतक का संस्कार करना चाहिये ॥७॥

शरीर से प्राण के निकल जाने पर उस देह का श्री रुद्राध्याय से अभिषेक करना चाहिये। उसके इष्टलिंग की भस्म, रुद्राक्ष, गन्ध आदि से पूजा करनी चाहिये ॥८॥ तब उस इष्टलिंग को हाथ पर रख कर पूजा करने के उपरान्त पुनः पेटिका में रख कर इष्टलिंगयुक्त उस शरीर को विमान में रख कर और सभी प्रकार की मंगल ध्वनि के साथ उसे समाधि स्थल पर ले जाय ॥९॥

---

१. ऊर्ध्वोच्छिष्ट शब्द का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। ऐसा लगता है कि मृत्यु के समय पंचक योग, त्रिपुष्कर योग आदि के रहने पर उनकी शान्ति का विधान यहाँ अभिप्रेत है।

२. प्राजापत्य कर्म एक प्रकार का प्रायश्चित्त है। जब कृच्छ्र का कोई विशेषण न हो, तो उसे प्राजापत्य कहते हैं। मनु (११.२११) इसका स्वरूप बताते हैं। विस्तार के लिये भारतरत्न पी० वी० काणे महोदय का 'धर्मशास्त्र का इतिहास' (भा० ३, पृ० १०९०-१०९१) देखिये।

विमानवाहकनामानि

महोक्षो वृषभश्चैव नन्दीशो नन्दिकेश्वरः ।
एतैश्च नामभिर्युक्तांश्चतुरो वाहकान् वृणेत् ॥१०॥

शिवारामं प्रति नयनम्

शिवारामं प्रति नयेत् तैर्वृतैर्वाहकैः सुतः ।
अग्रे मङ्गलनिस्वानाः सम्भारास्तदनन्तरम् ।
पूजाद्रव्याणि संस्कर्ता विमानं बान्धवाः क्रमात् ॥११॥
निवीतिनो वहेयुस्तद्विमानं वाहका अमी ।
निषदः प्रब्रुवाणाश्च गच्छेयुर्बान्धवा अपि ॥१२॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे समाधिदेशप्रापणं नाम
तृतीयः पटलः ॥३॥

उस विमान को उठा कर ले जाने वालों को महोक्ष, वृषभ नन्दीश और नन्दिकेश्वर नाम दिया जाता है और उन्हें उक्त विमान को ले जाने के लिये नियुक्त किया जाता है ॥१०॥

उक्त चार नामों से वरण किये गये विमान-वाहकों के साथ पुत्र विमान को शिवाराम पर ले जाय। आगे आगे मंगल वाद्य बजाने वाले चलते हैं। उनके पीछे सारे संभार रहते हैं, पूजा की सामग्री रहती है और संस्कार करने वाला इन सबके पीछे चलता है। तब विमान और उसके पीछे बन्धु-बान्धव चलते हैं ॥११॥ विमान के इन वाहकों को [३]निवीती होना चाहिये, अर्थात् इष्टलिंग से संबद्ध शिवसूत्र को कन्धे पर न रख गले में लटकाएँ रखना चाहिये। बान्धवों को भी इनके पीछे उपनिषदों का पाठ करते हुए चलना चाहिये ॥१२॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह समाधि स्थान तक विमान के प्रापण की विधि का निरूपण करने वाला तीसरा पटल समाप्त हुआ ॥३॥

★

---

३. "उपवीतं यज्ञसूत्रं प्रोद्धृते दक्षिणे करे। प्राचीनावीतमन्यस्मिन् निवीतं कण्ठलम्बितम् ॥" (२.७.४९) अमरकोश के इस श्लोक में यज्ञोपवीत की तीन स्थितियों का वर्णन किया गया है। दाहिनी तरफ लटकता हुआ यज्ञोपवीत उपवीत (सव्य), बाई तरफ लटकता प्राचीनावीत (अपसव्य) और कण्ठ में लटकता हुआ निवीत कहलाता है। प्रस्तुत श्लोक में तृतीय स्थिति का उल्लेख है।

चतुर्थः पटलः

रुद्र उवाच

अनन्तशक्तिकलितलीलावैभवशोभित ।
भूनिक्षेपविधानं तदशेषं ब्रूहि मे विभो ॥१॥

परशिव उवाच

समाधिस्थलनिर्देशः

शिवालयसमीपे वा शिवारामस्य वाऽन्तिके ।
शिवतीर्थसमीपे वा विल्वमूले नदीतटे ।
समाधिं कारयेत् प्राज्ञो वक्ष्ये तल्लक्षणं शृणु ॥२॥

समाधिरचनाप्रकारः

चतुरस्रं पञ्चपादं दीर्घं विस्तारमेव च ।
खातं नवपदं त्वाद्यं सोपानं चैकपादकम् ।
द्वितीयं द्विपदं प्रोक्तं तृतीयं त्रिपदं तथा ॥३॥
वेदिका च त्रिपादेन तस्य दक्षिणतो दिशि ।
त्रिकोणं च प्रकर्तव्यं त्रिपादं दीर्घमायतम् ॥४॥

रुद्र का प्रश्न —

अनन्त शक्तियों की सहायता से नाना प्रकार की लीलाओं के वैभव से शोभायमान हे विभो! भूनिक्षेप का सारा विधान आप मुझे बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर —

शिवालय के अथवा शिवाराम (उद्यान) के समीप में, अथवा शिवतीर्थ के आसपास विल्व वृक्ष की नीचे अथवा किसी नदी के तट पर बुद्धिमान् व्यक्ति को समाधि बनवानी चाहिये। उसका लक्षण तुम मुझसे सुनो ॥२॥

समाधि चौकोर होनी चाहिये। इसकी चौड़ाई और लम्बाई पाँच कदमों (डग) के बराबर हो। इसकी गहराई नौ पाद प्रमाण होगी। प्रथम सोपान एक पाद का, दूसरा दो पाद का और तीसरा तीन पाद का होगा ॥३॥ उस समाधि के भीतर दक्षिण दिशा में तीन पाद परिमित लम्बाई-चौड़ाई वाला त्रिकोण खोद कर उसके भीतर तीन पाद लम्बाई-चौड़ाई वाली वेदिका बनानी चाहिये ॥४॥ इस प्रकार समाधि को तैयार कर

खात्वा मा वो रिषदिति गोमयेनोपलिप्य च ।
रङ्गवल्याप्यलङ्कृत्य गायत्र्या प्रोक्ष्यं वारिणा ॥५॥
अग्निरित्यादिना भस्मशय्यां सम्यग् विधाय च ।
विकीर्य पत्रपुष्पाणि चतुर्दिक्षूपरि ह्यधः ॥६॥

समाधौ देहनिक्षेपः

षडक्षराणि विन्यस्य मूलेनैवाभिमन्त्र्य च ।
नदत्सु तूर्यवृन्देषु पुष्पवृष्टौ चरत्यपि ॥७॥
चित्तिः पृथिव्यग्निरिति चानुवाकान् समुच्चरन् ।
स्वस्तिकासनरूपेण तच्छरीरमुदङ्मुखम् ।
शम्भो हव्यं गृहाणेति निदधीत बिले तदा ॥८॥

भस्मलवणमृत्तिकापूरणम्

ऋतं तप इति पठन् भस्मना लवणेन च ।
मृत्तिकाभिः पूरयेताप्याकण्ठं तदनन्तरम् ॥९॥

उसे [1]'मा वो रिषत्' इस मन्त्र से गोबर से लीपना चाहिये और रंगवल्ली से अलंकृत कर गायत्री मन्त्र से जल से उसका प्रोक्षण करना चाहिये ॥५॥ 'अग्नि'[2] इत्यादि मन्त्र से भली प्रकार से भस्म-शय्या बनाकर चारों दिशाओं में ऊपर-नीचे सब जगह पुष्प विखेरने चाहिये ॥६॥

वहाँ षडक्षरी मन्त्र का विन्यास कर मूल पंचाक्षर मन्त्र से उस स्थल को अभिमन्त्रित करना चाहिये। इतना सब कर लेने के बाद बाजे-गाजे, नगाड़े आदि की ध्वनि के बीच और पुष्पवृष्टि के बीच ॥७॥ 'चित्तिः, पृथिव्यग्नि' इत्यादि अनुवाकों का पाठ करते हुए मृत देह को स्वस्तिकासन मुद्रा में उत्तराभिमुख बैठा कर तब हे शम्भो! आप अपनी हवि को ग्रहण करें, ऐसा कहते हुए उस समाधि स्थल में रखना चाहिये ॥८॥

'ऋतं तपः'[3] इस मन्त्र का पाठ करते हुए भस्म, लवण एवं मृत्तिका से कण्ठ पर्यन्त

---

१. "मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः। द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥" (माध्यं० १२।९५)।
२. दूसरे पटल की तीसरी टिप्पणी में पूरा मन्त्र देखिये।
३. "ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपः" (महाना० उ०, अष्टम अनुवाक)।

सर्वस्य प्रतिशिवेति मूर्धानं दिव इत्यपि ।
सजलं भस्म मृत्पिण्डं पितुर्मूर्धनि निक्षिपेत्
ततश्च पूरयेद् गर्तं भस्मना मृत्स्नयापि च ॥१०॥

सचैलं स्नानं केशश्मश्रुवपनं च

वस्त्रं सन्धापयेदादौ ततः स्नानं समाचरेत् ।
सचेलस्तु पुनः स्नात्वा केशश्मश्रूणि वापयेत् ॥११॥
ब्राह्मणस्वर्णघातादिपापानि विविधानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान् वपाम्यहम् ॥१२॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पापानि विविधानि च ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्मात् केशान् वपाम्यहम् ।
इति मन्त्रं परिपठन् केशश्मश्रूणि वापयेत् ॥१३॥

उसको भर दे। इसके बाद ॥९॥ 'सर्वस्य प्रति शिव' एवं 'मूर्धानं दिवः'[४] इन मन्त्रों से सजल भस्म और मृत्पिण्ड का पिता के शिर पर निक्षेप करे। इसके बाद भस्म एवं मिट्टी से उस गर्त को पूरा भर दे ॥१०॥

पहले उस समाधि को वस्त्र से ढक कर स्नान करे। पुनः सचैल स्नान कर शिर के बाल और दाढ़ी-मूछ बनवावे ॥११॥ ब्राह्मण वध, सुवर्ण की चोरी जैसे नाना प्रकार के महापातकों की स्थिति केशों में बनी रहती है। अतः मैं केशवपन का विधान बता रहा हूँ ॥१२॥ सुमेरु और मन्दराचल के समान आकार वाले विविध प्रकार के पाप केशों के सहारे शरीर में रहते हैं, अतः मैं उनके वपन का विधान बताता हूँ, इन दो मन्त्रों का पाठ करते हुए व्यक्ति केश और श्मश्रु का वपन करता है ॥१३॥

---

४. "मूर्धानं दिवसो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आजातमग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥" (माध्य० ७.२४)

शिखिलक्षणम्

अग्नेरिव शिखा यस्य विद्याज्ज्ञानमयी शिखा ।
स शिखीत्युच्यते विद्वानितरे केशधारिणः ॥१४॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे समाधिविधिकथनं नाम
चतुर्थः पटलः ॥४॥

शैव साधक की शिखा ज्ञानमयी होती है। यह अग्नि की शिखा के समान अतितेजस्विनी रहती है। ऐसा शिवभक्त ही वास्तविक शिखी कहलाता है। अन्य व्यक्ति तो मात्र शिखा के रूप में केशों को धारण करते हैं॥१४॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह समाधिनिर्माण की विधि को बताने वाला चौथा पटल समाप्त हुआ॥४॥

पञ्चमः पटलः

रुद्र उवाच

अनादिनिधनानन्तकल्याणगुणवारिधे ।
भूनिक्षेपानन्तराणि कृत्यान्यपि निबोध मे ॥१॥

परशिव उवाच

समाधिस्थले सवृषभलिङ्गस्थापनपूजनम्

निर्वृत्तवपनः स्नात्वा भूतिरुद्राक्षभूषितः ।
गणानुज्ञां गृहीत्वाऽथ दिव्यरूपाप्तये पितुः ॥२॥
पञ्चभिर्नवभिर्वाऽथ वृषभैरभिशोभितम् ।
पितृनामाङ्कितं लिङ्गं समाधौ स्थापयेत् सुतः ॥३॥
तदा दद्याद् गवादीनि दानानि दश चादरात् ।
समाधिस्थापितं लिङ्गं सवृषं पूजयेदपि ॥४॥
मृद्घट्टनादिव्यापारजाततापोपशान्तये ।
क्षीरेण तर्पयेदिष्टलिङ्गादीनि महेश्वर ॥५॥

रुद्र का प्रश्न —

हे अनादिनिधन, अनन्त कल्याणगुणों के समुद्र, परमशिव! भूनिक्षेप विधि के अनन्तर किये जाने वाले कृत्यों को आप मुझे बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर —

क्षौर कर्म से निवृत्त होने के बाद स्नान करे और भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करे। इसके बाद शिवगण (जंगम) से अनुज्ञा लेकर पिता के दिव्य रूप की प्राप्ति के लिये ॥२॥ पाँच अथवा नौ ऋषभों से अत्यन्त शोभित हो रहे, पिता के नाम से अंकित लिंग को उसका पुत्र समाधि-स्थल पर स्थापित करे ॥३॥ उस समय गाय आदि का [1]दशविध दान भी आदरपूर्वक करना चाहिये और समाधि पर स्थापित लिंग का वृषभ के साथ पूजन भी करना चाहिये ॥४॥ समाधि-संस्कार के समय मिट्टी के डालने से जो शरीर को ताप लगता है, उसकी शान्ति के लिये दूध के अभिषेक से इष्टलिंग आदि को तृप्त करना चाहिये ॥५॥ पिता के कल्याण के लिये पुत्र को प्रतिदिन तीन जलांजलि देनी

---

१. गो, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, अन्न, गुड़, चाँदी और लवण का दान दशविध दान में परिगणित है।

पित्रे दद्यादनुदिनं त्रिसंख्यानुदकाञ्जलीन् ।
वासोदकादिकं नैव देयं पितृहितैषिणा ॥६॥

नग्नप्रच्छादनाराधनम्

प्रविश्य ज्ञातिभिः सार्धं दीपेन सहितं गृहम् ।
नग्नप्रच्छादनाभिख्यं कुर्यादाराधनं सुतः ॥७॥

समाधिस्थापितलिङ्गस्य दशाहपर्यन्तं रक्षणम्

समाधिस्थापितं लिङ्गं दशाहान्न विचालयेत् ।
जन्त्वादिभिर्विचलिते यथास्थानं निधाय तत् ॥८॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा तत् स्पृष्ट्वा व्याहृतीर्जपेत् ।
तस्मिन् स्वरूपतो नष्टे विधिवत् स्थापयेत् पुनः ॥९॥

चाहिये। पिता का हित चाहने वाले को वासोदक (वस्त्र को निचोड़ कर दिया जाने वाला जल) कभी नहीं देना चाहिये ॥६॥

अपने बन्धु-बान्धवों के साथ दीपक साथ में लेकर गृह में प्रवेश करना चाहिये और वहाँ पुत्र [२]नग्न-प्रच्छादन नामक आराधन करे ॥७॥

समाधि पर स्थापित्त लिंग को दस दिन तक वहाँ से न हटावे। यदि जीव-जन्तु के द्वारा वह अपने स्थान से हटा दिया गया है, तो उसे यथास्थान रखकर ॥८॥ तीन बार प्राणायाम करे। उसका स्पर्श करते हुए व्याहृति (ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः) का जप करना चाहिये। यदि लिंग स्वरूपतः नष्ट हो गया है, तो विधिपूर्वक उसकी पुनः स्थापना करे ॥९॥

---

२. "घर में प्रवेश कर लेने के उपरान्त नग्न-प्रच्छादन नामक श्राद्ध करना चाहिये। नग्न-प्रच्छादन श्राद्ध में एक घड़े में अनाज भरा जाता है। एक पात्र में घृत एवं सामर्थ्य के अनुसार सोने के टुकड़े या सिक्के भरे जाते हैं। अन्न से भरे घड़े की गरदन वस्त्र में बंधी रहती है। विष्णु का नाम लेकर दोनों पात्र किसी कुलीन दरिद्र ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं" (धर्म०, पृ० ११३१)।

दिव्यदेहावाप्तिक्रमः

प्रथमाह्निककृत्येन तस्य मूर्धाऽभिजायते ।
नासिकाश्रवसी नेत्रे द्वितीयाह्निककृत्यतः ॥१०॥
ग्रीवा वक्षो भुजौ चापि तृतीयेऽह्नि भवन्त्यपि ।
नाभिस्थानं लिङ्गगुदे चतुर्थेऽह्नि भवन्त्यमी ॥११॥
ऊरू तु पञ्चमे स्यातां चर्म षष्ठे भवेदपि ।
सप्तमेऽह्नि सिराः सर्वा जायन्ते तद्विधानतः ॥१२॥
अष्टमेऽह्नि च जायेरन् सर्वरोमाण्यनन्तरम् ।
नवमाह्निककृत्येन वीर्यं तस्याभिजायते ॥१३॥
दशमाह्निककृत्येन तृप्तिस्तस्य परा भवेत् ।
आराधनं ततः कार्यं दिव्यरूपवतः पितुः ॥१४॥
एकोद्दिष्टविधानेन रुद्रत्वं तस्य जायते ।
तत्त्वसंयोजनवशाद् महेशत्वं पुनर्भवेत् ॥१५॥

---

[३]प्रथम दिन के कृत्य से उस मृत व्यक्ति का शिर बनता है और इसी तरह से दूसरे दिन के कृत्य से उसकी नासिका, श्रवण और नेत्र निष्पन्न होते हैं॥१०॥ तीसरे दिन के कृत्य से ग्रीवा, वक्षस्थल और भुजाएँ सम्पन्न होती हैं और चौथे दिन में नाभिस्थान के साथ लिंग और गुदा की निष्पत्ति होती है॥११॥ पंचम दिन में जंघास्थल और छठे दिन चर्म की निष्पत्ति होती है। इसी तरह से सातवें दिन के विधान से शरीर की सारी शिराएँ बन जाती हैं॥१२॥ आगे आठवें दिन के कृत्य से शरीर के सारे रोम निष्पन्न होते हैं। नवें दिन के कृत्य मे उस मृत देह में वीर्य की निष्पत्ति होती है॥१३॥ दसवें दिन का कृत्य पूरा होते ही उसको परम तृप्तिलाभ होता है। इस प्रकार दस दिन के कृत्य से दिव्य रूप धारण किये पिता का आराधन करना चाहिये॥१४॥ उसके निमित्त [४]एकोद्दिष्ट का विधान पूरा कर देने पर उसे रुद्र पद प्राप्त होता है और [५]तत्त्वसंयोजन की विधि को पूरा कर देने पर वह साक्षात् महेश हो जाता है॥१५॥

---

३. यहाँ के १०-१४ श्लोकों में प्रदर्शित विषय धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में भी इसी रूप में उपलब्ध है।

४. एकोद्दिष्ट का लक्षण यहीं आगे आठवें श्लोक में बताया गया है।

५. तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया लिंगधारणचन्द्रिका (पृ० २७१-२७७) में वर्णित है।

नवाराधनक्रमः

प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा ।
नवमैकादशाह्नोश्च नवाराधनमाचरेत् ॥१६॥
अन्तर्दशाहे दर्शो वा संक्रान्तिर्वा भवेद्यदि ।
तदा समापयेदन्यः सुतस्तु न समापयेत् ॥१७॥

अदीक्षितपितृपुत्रयोर्दीक्षाक्रमः

पित्रोर्मरणकाले तु दीक्षाहीनः सुतो यदि ।
अन्त्यक्रियाऽस्य निर्वर्त्या पुत्रे निक्षिप्य कर्तृताम् ॥१८॥
अदीक्षितो यदि पिता तत्तनोर्नहि संस्कृतिः ।
तमावाह्याथ कूर्चायां दीक्षां दत्त्वा यथोदितम् ।
समाधिं सुविधायाथ नित्यकर्मादिकं चरेत् ॥१९॥

प्रथम दिन, तीसरे, पाँचवें, सातवें दिन तथा नवें एवं ग्यारहवें दिन पुत्र [६]नवाराधन विधि को सम्पन्न करे ॥१६॥ दस दिन के भीतर यदि अमावास्या तिथि अथवा संक्रान्ति आजाय, तो ऐसी स्थिति में अन्य व्यक्ति आराधन विधि को वहीं पूरा कर दे, किन्तु पुत्र को ऐसा नहीं करना चाहिये। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यदि मृत व्यक्ति का आराधन कर्म करने वाला उसका पुत्र नहीं है, तो उसे नवाराधन अमावास्या या संक्रान्ति के आजाने पर नौ दिन बीते बिना भी पूरा कर देना चाहिये। यदि पुत्र नवाराधन कर रहा है, तो उसे संक्रान्ति आदि के आने पर भी पूरे नौ दिनों तक का सारा कर्म करना चाहिये ॥१७॥

माता-पिता की मृत्यु के समय पुत्र यदि अभी शिवदीक्षा से सम्पन्न नहीं है, तो ऐसी स्थिति में पुत्र के प्रतिनिधि के रूप में किसी दूसरे को इनका संस्कार करना चाहिये ॥१८॥ यदि पिता दीक्षित नहीं है, तो उसके शरीर के ये सब संस्कार नहीं किये जाते। ऐसी स्थिति में कुशनिर्मित कूर्च में उसका आवाहन कर शास्त्रोदित विधि से पहले उसका दीक्षा-संस्कार करना चाहिये और तब समाधि के संस्कारों को सुसम्पन्न कर उसके निमित्त अन्य सभी कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये ॥१९॥ पिता का पिता (पितामह) अथवा

---

६. नवाराधन (नवश्राद्ध) के विशेष विवरण के लिये धर्मशास्त्र० (पृ० ११५३ एवं १२७९) देखिये। यहाँ हमें स्मरण रखना है कि वीरशैव आगमों में श्राद्ध के लिये सर्वत्र आराधन शब्द प्रयुक्त है।

पितुः पिता तत्पिता वा दीक्षाहीनो मृतो यदि ।
पितुस्तदैक्यसिद्ध्यर्थं दीक्षां परोक्षमाचरेत् ॥२०॥
स्थण्डिले कूर्चमानीय मृतमावाह्य नामतः ।
परोक्षदीक्षाकरणे स लिङ्गी भवति ध्रुवम् ॥२१॥

दशमदिने वपनक्षीरतर्पणादिकम्

ज्ञातयः सप्तमादर्वाक् कनिष्ठा दशमेऽहनि ।
वापयेयुश्च ते सर्वे कर्तृभिः सह सर्वदा ॥२२॥
स्नात्वा धृतत्रिपुण्ड्राश्च ते कुर्युः क्षीरतर्पणम् ।
ततः कुर्याद् यथाशक्ति दशदानानि यत्नतः ॥२३॥

सवृषभलिङ्गविसर्जनम्

समाधिलिङ्गं सवृषमुद्वास्य वसने तथा ।
निधाय तीर्थमानीय विसृजेत् तत्र संयतः ॥२४॥

उसका भी पिता (प्रपितामह) यदि बिना शिवदीक्षा लिये मरण प्राप्त किये हैं, तो ऐसी स्थिति में पिता के साथ इनके ऐक्य की सिद्धि के लिये परोक्ष दीक्षा सम्पन्न करनी चाहिये ॥२०॥ स्थण्डिल पर कूर्च को रख कर नामग्रहण पूर्वक मृत व्यक्ति का वहाँ आवाहन कर परोक्ष दीक्षा पूरी की जाती है। ऐसा करने पर वह भी लिंगधारी बन जाता है ॥२१॥

ज्ञाति के बन्धु-बान्धवों को सातवें दिन से पहले और मृत व्यक्ति की अपेक्षा आयु में छोटे व्यक्तियों को दसवें दिन पित्राराधन कर्म को करने वालों के साथ वपन कराना चाहिये ॥२२॥ स्नान करके त्रिपुण्ड्र धारण कर उनको दूध से तर्पण करना चाहिये। इसके बाद शक्ति के अनुसार यत्नपूर्वक दशविध दान देना चाहिये ॥२३॥

इसके बाद समाधि पर स्थापित लिंग को वृषभ के साथ वहाँ से उठा कर वस्त्र में बाँध कर तीर्थस्थान पर ले जाना चाहिये और वहाँ संयत चित्त से उसको जल में विसर्जित कर देना चाहिये ॥२४॥

होमपुण्याहवाचनादिकम्

लिङ्गमुद्वास्य च स्नात्वा तिलामलकवारिभिः ।
गाणपत्याभिधं चैव होममानन्दसंज्ञितम् ॥२५॥
कुर्यात् पितृगणैः साकमानन्दसमवाप्तये ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा ततो गच्छेद् गृहं प्रति ॥२६॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे लिङ्गस्थापनादिविधिकथनं नाम पञ्चमः पटलः ॥५॥

लिंग का जल में विसर्जन कर तिल, आवला आदि से मिले जल से स्नान कर गाणपत्य होम अथवा आनन्दसंज्ञक होम करना चाहिये॥२५॥ यह सारा कार्यकलाप अपने पितृगणों के साथ आनन्द की प्राप्ति के लिये किया जाता है। इसके बाद पुण्याहवाचन कर व्यक्ति अपने घर को जावे॥२६॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह लिंगस्थापन आदि की विधि को बताने वाला पाँचवां पटल समाप्त हुआ॥५॥

षष्ठः पटलः

रुद्र उवाच

अप्रमेयगुणाधार चिदानन्दैकसागर ।
एकादशेऽह्नि कर्तव्यं वदस्व करुणानिधे ॥१॥

परशिव उवाच

एकादशाहकृत्यानि

एकादशेऽहनि स्नात्वा माहेशान् वै निमन्त्र्य च ।
रुद्रहोमं विधायादौ वृषोत्सर्जनमाचरेत् ॥२॥
उत्सृजेद् वृषभं श्वेतं रोहितं नीलमेव वा ।
तृप्त्या वै नन्दिकेशस्य मम सान्निध्यलब्धये ।
निराभार्याश्रमयुते सिद्धे न वृषमुत्सृजेत् ॥३॥

षोडशाराधनानि

आद्यमासिकमुख्यानि षोडशाराधनानि च ।
रुद्रगणाराधनं च वृषोत्सर्गाभिधं तथा ॥४॥

रुद्र का प्रश्न —

हे अपरिमित गुणों के आधार, चित् और आनन्द के एकमात्र सागर, करुणानिधि, परशिव ! ग्यारहवें दिन के कर्तव्य कर्मों को आप मुझे बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर —

ग्यारहवें दिन पहले स्नान करे और माहेश्वरों (जंगमों) को निमन्त्रित करे। पहले रुद्रहोम की विधि को सम्पन्न कर तब वृषोत्सर्ग क्रिया को सम्पन्न करे ॥२॥ [1]वृषोत्सर्ग कर्म में श्वेत, लाल अथवा कृष्ण वर्ण के वृषभ का उत्सर्ग किया जाता है, अर्थात् वृषभ (बैल) को सांढ बनने के लिये छोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से नन्दिकेश सन्तुष्ट होते हैं और शिवसांनिध्य प्राप्त होता है। निराभारी आश्रम में रहने वाले वीरशैव सिद्ध के लिये वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता ॥३॥

---

१. पितरों के निमित्त वृष (बैल=सांड) के उत्सर्ग की अतीव महिमा है। इसकी पद्धति धर्मशास्त्र के इतिहास के भाग तीन (पृ० १२९१-९२) में विस्तार से बताई गई है।

पञ्चाशद् रुद्राराधनम्

आचारादिकषड्लिङ्गस्थलषट्कसमाश्रयम् ।
अनुत्तरं च पञ्चाशद् रुद्राराधनमाचरेत् ॥५॥
एकादशे भवेदाद्यमूने मास्यूनमासिकम् ।
त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यादूनषाण्मासिकं तथा ।
प्रतिमासं मृताहस्सु ऊनाब्दं चेति षोडश ॥६॥
एकादशेऽह्नि वै कुर्यात् षोडशाराधनान्यपि ।
द्वादशाहे तदा कुर्यात् तत्त्वसंयोजनं सुतः ॥७॥

एकोद्दिष्टलक्षणम्

एकोद्दिष्टविधानेन तत्त्वसंयोगसिद्धये ।
क्रियते यदेकमुद्दिश्य त्वेकोद्दिष्टं प्रकीर्तितम् ॥८॥

आद्यमासिक से लेकर पितृगणों के लिये सोलह प्रमुख आराधन विहित हैं। इनके साथ रुद्रगणों का आराधन और वृषोत्सर्ग विधि को किया जाता है॥४॥

[२]आचार आदि षड्विध लिंग और षट्स्थल संबन्धी आराधन के साथ पचास प्रकार के रुद्रों का श्रेष्ठ आराधन भी यहाँ किया जाता है॥५॥ ग्यारहवें दिन पहला आराधन होता है। मास की समाप्ति के पहले ऊनमासिक आराधन किया जाता है। तीन पक्ष बीतने पर त्रैपक्षिक आराधन और छः मास की समाप्ति के पहले ऊन षाण्मासिक आराधन किया जाता है। मृत्यु की प्रत्येक मास की तिथि पर तथा वर्ष की समाप्ति के पहले—इस तरह ये सोलह आराधन सम्पन्न होते हैं॥६॥ ग्यारहवें दिन इन सोलहों आराधनों को एक साथ करना चाहिये और तब बारहवें दिन पुत्र को तत्त्वसंयोजन की विधि को सम्पन्न करना चाहिये॥७॥

एकोद्दिष्ट विधान के अनुसार तत्त्वसंयोजन विधि को सम्पन्न करने के लिये एक व्यक्ति को लक्ष्य कर जो अनुष्ठान किया जाता है, उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं॥८॥

---

२. यह विषय आगे इसी पटल के १२-१३ श्लोकों में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है।

शैवाराधने वर्ज्यानि

विश्वेदेवा न पूज्यन्ते नाभिश्रवणमुच्यते ।
प्रदक्षिणं विसर्गश्च सीमान्तगमनं नहि ॥९॥

माहेश्वरभोजनम्

एकादशेऽह्नि माहेशानेकादश सुभोजयेत् ।
यथासम्भवमेतद्धि रुद्राराधनमीरितम् ॥१०॥
तथैव भोजयेदेकं वृषोत्सर्गफलाप्तये ।
वृषोत्सर्गाराधनं तु विधातव्यं मम प्रियम् ॥११॥

रुद्राराधनक्रमः

आचारादिकषड्लिङ्गस्थलषट्कसमाश्रयम् ।
खड्गेशादिकपञ्चाशद् रुद्राराधनमाचरेत् ॥१२॥
चत्वारः षड् दश तथा रुद्रा द्वादश षोडश ।
द्वावित्याचारलिङ्गादिस्थलषट्कसमाश्रयाः ॥१३॥

यहाँ विश्वेदेव देवताओं की पूजा नहीं की जाती और न [३]अभिश्रवण ही किया जाता है। प्रदक्षिणा, विसर्ग अथवा सीमान्तगमन भी यहाँ नहीं किया जाता॥९॥

ग्यारहवें दिन ग्यारह माहेश्वरों को निमन्त्रित कर स्वादिष्ट भोजन कराना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुसार किया गया यह अनुष्ठान रुद्राराधन कहलाता है॥१०॥ इसी के साथ एक माहेश्वर को वृषोत्सर्ग के फल की प्राप्ति के लिये भोजन कराना चाहिये। वृषोत्सर्ग की यह आराधन-विधि अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि यह मुझे बहुत प्रिय है॥११॥

आचार आदि षड्लिंग और षट्स्थल से ही संबद्ध खड्गेश आदि पचास रुद्रों की समाराधना भी यहाँ विहित है॥१२॥ आचारलिंग में चार, गुरुलिंग में छः, शिवलिंग में दस, जंगमलिंग में बारह, प्रसादलिंग में सोलह और महालिंग में दो—इस तरह से ये पचास रुद्र आचार आदि षड्विध लिंगों से और षट्स्थलों से संबद्ध हैं॥१३॥

---

३. श्राद्ध के अवसर पर भोजन के लिये बैठे ब्राह्मणों के द्वारा किया जाने वाला वेद-मन्त्रों का उच्चारण अभिश्रवण कहलाता है।

पंञ्चाशद्रुद्रनामानि

खङ्गेशश्च बकेशश्च श्वेतो भृङ्गीश्वरस्तथा ।
छगलण्डद्विरण्डेशौ महाकालीश्वरोऽपि च ॥१४॥
भुजङ्गेशपीनाकीशदारुकेशास्ततः परम् ।
अर्धनारीडुमाकान्त आषाडीशस्ततः स्मृतः ॥१५॥
दण्डीशात्रीशमित्रेशमेषेशा लोहितेश्वरः ।
शिखीश्वरश्च क्रोधेशश्चण्डः पञ्चान्तकेश्वरः ॥१६॥
शिवोत्तमैकरुद्रेशौ कूर्मेशश्चैकनेत्रकः ।
चतुराननेश्वराजेशशर्वसोमेश्वरास्तथा ॥१७॥
लाङ्गलीशश्च संवर्तकेशः श्रीकण्ठसंज्ञकः ।
अनन्तेशश्च सूक्ष्मेशस्त्रिमूर्तीशस्ततः स्मृतः ॥१८॥
अमरेशस्तथाऽर्घेशो भारभूतेश्वरस्तथा ।
अतिथीशश्च स्थाण्वीशो हरो झिण्टीश्वरस्तथा ॥१९॥

---

[४]खड्गेश, बकेश, श्वेत, भृंगीश्वर, छगलण्डेश, द्विरण्डेश, महाकालीश्वर, भुजंगेश, पिनाकीश, दारुकेश, अर्धनारीश, उमाकान्त, आषाढीश, दण्डीश, अत्रीश, मित्रेश, मेषेश, लोहितेश्वर, शिखीश्वर, क्रोधेश, चण्ड, पंचान्तकेश्वर, शिवोत्तम, एकरुद्रेश, कूर्मेश, एकनेत्र, चतुराननेश, अजेश, शर्व, सोमेश्वर, लांगलीश, संवर्तकेश, श्रीकण्ठ, अनन्तेश, सूक्ष्मेश, त्रिमूर्तीश, अमरेश, अर्घेश,

---

४. श्रीकण्ठ लेकर संवर्तक पर्यन्त ५० रुद्रों की नामावली प्रपंचसार (३।३९-४४) में भी मिलती है। इस नामावली में बहुत कुछ साम्य है, तथापि दोनों स्थलों के क्रम में तो भिन्नता है ही, कहीं कहीं नाम भी भिन्न हैं। षड्विध लिंग और षट्स्थल की षट्चक्र में भावना के प्रसंग में इन रुद्रों को उन चक्रों में ध्येय वर्णों का प्रतिनिधि माना जा सकता है, क्योंकि षट्चक्रों का विवरण देने वाले ग्रन्थों में भी ५० वर्णों की षट्चक्रों में स्थिति इसी प्रकार की है।

भौतिकेशश्च सद्योजातेशश्चानुग्रहेश्वरः ।
अक्रूरेशो महासेनो लकुलीशः शिवेश्वरः ।
पञ्चाशत्संख्यका रुद्रा अमी पूज्या यथाक्रमम् ॥२०॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे एकादशाहकर्तव्यविधि-
कथनं नाम षष्ठः पटलः ॥६॥

भारभूतेश्वर, अतिथीश, स्थाण्वीश, हर, झिण्टीश, भौतिकेश, सद्योजातेश, अनुग्रहेश्वर, अक्रूरेश, महासेन, लकुलीश और शिवेश्वर—ये पचास रुद्र हैं। इनकी क्रमानुसार पूजा करनी चाहिये ॥१४-२०॥

इस प्रकार श्रीमकुटागम के चर्यापाद का यह एकादशाह के कर्तव्यों की
विधि को बताने वाला छठा पटल समाप्त हुआ ॥६॥

★

सप्तमः पटलः

रुद्र उवाच

सर्वशक्तिसमायुक्त सर्वैश्वर्यसमुन्नत ।
द्वादशाहकृत्यविधिमशेषं ब्रूहि मे विभो ॥१॥

परशिव उवाच

द्वादशाहकृत्यानि

चतुर्थस्य निवृत्त्यर्थं जीवभावनिवृत्तितः ।
तत्त्वादियोजनादूर्ध्वं चतुर्थोऽपि निवर्तते ॥२॥
गुरुदीक्षापरिप्राप्तशिवलिङ्गाङ्गयोगतः ।
द्विरेफकीटन्यायेन शिवैक्यं प्राप्तवान् द्विजः ॥३॥

रुद्र का प्रश्न—

सभी प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न, सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से अलंकृत हे विभो परशिव! आप द्वादशाह के कृत्य की सारी पद्धति मुझे बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर—

मृत व्यक्ति के [1]चतुर्थ भाव की निवृत्ति के लिये तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया का अनुष्ठान किया जाता है। इससे जीवभाव की निवृत्ति के साथ चतुर्थ भाव की भी निवृत्ति हो जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि द्वादशाह के दिन तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया से मृत व्यक्ति का पिता, पितामह और प्रपितामह के साथ संयोजन कर देने पर चतुर्थ भाव के रूप में उसकी अलग से स्थिति नहीं रह जाती ॥२॥ गुरु के द्वारा दीक्षा के समय दिये गये इष्टलिंग को अपने शरीर पर निरन्तर धारण करने से शिवभक्त द्विज उसी तरह से शिवैक्य को प्राप्त कर लेता है, जैसे कि भ्रमर की भावना से कीट स्वयं भ्रमर बन जाता है ॥३॥ ऐसे लिंगांगसंगी शिवभक्त

---

1. वीरशैव मत में सपिण्डीकरण निषिद्ध है। उसके स्थान पर प्रेत की कलाओं और तत्त्वों का पिता, पितामह और प्रपितामह की कलाओं और तत्त्वों से संयोजन किया जाता है और इस प्रक्रिया से उस प्रेत का चतुर्थ भाव समाप्त हो जाता है।

लिङ्गाङ्गसंगिनि मृते सम्प्राप्ते द्वादशेऽहनि ।
सापिण्ड्यं नैव कर्तव्यं प्रेतत्वाभावतस्ततः ॥४॥
दीक्षाकालपरिप्राप्तशिवैक्यं जीवभावतः ।
आविर्भूतं विजानन्ति मदीयागमवेदिनः ॥५॥
सदाशिवाद्यभिन्नेभ्यः पितृभ्यस्तत्त्वसम्मिताः ।
कलाः संगृह्य चान्यत्र समभ्यर्च्य यथाविधि ॥६॥

तत्त्वादियोजनक्रमः

जीवभावनिवृत्त्यर्थं मृतलिङ्गाङ्गसङ्गिनः ।
वर्गत्रयैक्यसिद्ध्यर्थं तत्त्वादीन् योजयेत् सुतः ॥७॥
द्वादशेऽहनि वै कर्ता माहेशान् सन्निमन्त्र्य च ।
गृहीत्वैव गणानुज्ञामेवं संकल्पमाचरेत् ॥८॥
पितुस्तदीयपित्राद्यैर्महेशादिस्वरूपकैः ।
शिवसायुज्यसिद्ध्यर्थं करिष्यन् तत्त्वयोजनम् ॥९॥

की मृत्यु हो जाने पर द्वादशाह के अवसर पर उसका सापिण्ड्य संस्कार नहीं किया जाता, क्योंकि उसमें प्रेतत्व नहीं रहता, वह तो शिवस्वरूप हो गया है। अभिप्राय यह है कि सापिण्ड्य संस्कार प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये किया जाता है। इनमें प्रेतत्व के न रहने के कारण इनको सापिण्ड्य संस्कार की आवश्यकता ही नहीं रहती ॥४॥ शैवागमों में निष्णात विद्वान् यह भलीभाँति जानते हैं कि गुरु के द्वारा दीक्षा दिये जाने के साथ ही दीक्षित व्यक्ति में जीवभाव के स्थान पर शिवभाव प्रादुर्भूत हो जाता है ॥५॥ सदाशिव आदि से अभिन्न स्वरूप वाले पिता, पितामह आदि के साथ तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया से कलाओं का परिग्रहण कर उनका विधिपूर्वक मृत व्यक्ति में संचार कर अर्चन किया जाता है ॥६॥

मृत लिंगांगसंगी के जीवभाव की निवृत्ति के लिये पिता आदि के तीन वर्गों के साथ एकता की सिद्धि के लिये पुत्र को तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया को पूरा करना चाहिये ॥७॥ कर्ता को चाहिये कि वह बारहवें दिन माहेश्वरों को निमन्त्रित करे। गण की अनुज्ञा लेकर इस प्रकार संकल्प करे ॥८॥ मैं अपने पिता को उनके पिता, पितामह आदि के साथ, जो कि महेश्वर आदि के स्वरूप हैं, तत्त्वसंयोजन

नन्दिकेशमहाकालसंज्ञिनोर्विश्वदेवयोः ।
पितुः पितामहादीनां महेशादिस्वरूपिणाम् ॥१०॥
षट्त्रिंशतां च तत्त्वानां कलानामष्टत्रिंशताम् ।
आराधनं करिष्यामीत्येवं संकल्पपूर्वकम् ॥११॥
विश्वेदेवौ च पित्रादीन् तत्त्वानि च कलास्तथा ।
आवाह्य चाभिसम्पूज्य चिकीर्षुस्तत्त्वयोजनम् ।
दश दानानि वै कुर्याद् गवादीनि यथाक्रमम् ॥१२॥
अथ कर्ता गृहीत्वा तु ताम्रपात्रं हि साक्षतम् ।
पितामहादिस्थानस्थमाहेशनिकटस्थितः ॥१३॥
पितामहादिभिः पात्रे हस्तस्पर्शं हि कारयन् ।
पितामहादीनावाह्य पितृस्थानीयमाश्रितः ॥१४॥
सद्योजातं प्रपद्यामीत्याद्यान् मन्त्रान् समुच्चरन् ।
चन्द्रशेखरमुख्यान् वै तत्त्वेशांस्तत्र योजयेत् ॥१५॥

की प्रक्रिया से आपस में मिला रहा हूँ, जिससे कि वे शिवसायुज्य प्राप्त कर सकें॥९॥ नन्दिकेश और महाकाल संज्ञक विश्वदेवों के तथा महेश आदि के स्वरूप पितामह आदि के साथ मैं अपने पिता के छत्तीस[२] प्रकार के तत्त्वों का, अड़तीस प्रकार की कलाओं का संकल्पपूर्वक आराधन करूँगा॥१०-११॥ विश्वेदेवों का, पिता-पितामह आदि का, तत्त्वों का और कलाओं का आवाहन और पूजन कर तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया का प्रारंभ करते हुए गोदान आदि दस दानों की विधि को पहले पूरा करे॥१२॥ ऐसा करते समय पहले कर्ता अक्षत के साथ ताम्रपात्र लेकर, महेश्वर आदि के स्वरूप पितामह आदि के स्थान के पास आकर बैठे॥१३॥ वहाँ पितामह आदि का आवाहन कर पितृस्थान के पास कर्ता बैठे और उस पात्र पर पितामह आदि के हस्तस्पर्श की भावना करे॥१४॥

---

२. छत्तीस तत्त्वों के साथ पांच कलाओं और ३८ कलाओं की संयोजन-प्रक्रिया लिंगधारणचन्द्रिका (पृ० २७१-२७७) में वर्णित है। वीरशैवदीक्षाविधि (पृ० ८३-८४) में भी इसका विस्तार देखा जा सकता है।

कलायोजनम्

ईशानः सर्वविद्यानामित्याद्यानुच्चरन् मनून् ।
शशिन्यादिकलाश्चापि क्रमशस्तत्र योजयेत् ॥१६॥

चतुर्थभावनिवृत्त्यर्थं पात्रप्रदानक्रमः

पितृस्थानस्थितायास्मै दत्त्वा तत्पात्रमादितः ।
पितरं पितामहस्य स्थाने संयोजयाम्यहम् ।
इति ब्रुवाणस्तत्पात्रं दद्यात् पैतामहाय वै ॥१७॥
पितामहं महेशस्वरूपं हि प्रपितामहे ।
संयोजयामीति वदन् तत्पात्रं पूर्ववत्ततः ।
प्रपितामहपदस्थाय दद्यान्माहेश्वराय च ॥१८॥
ततः परं सदाशिवस्वरूपं प्रपितामहम् ।
संयोजयाम्यहं वृद्धप्रपितामह इति ब्रुवन् ।
तत्स्थानसंस्थितायास्मै दद्यात् पात्रमनन्तरम् ॥१९॥

'सद्योजातं प्रपद्यामि'[३] इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ चन्द्रशेखर (शिव) प्रभृति तत्त्वेशों का उनके साथ संयोजन करे॥१५॥

'ईशानः सर्वविद्यानाम्'[४] इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ उनके साथ शशिनी आदि कलाओं का भी संयोजन करे॥१६॥

तब पितृस्थान में स्थित माहेश्वर को पहले वह ताम्रपात्र हाथ में दे। बाद में पिता को मैं पितामाह के स्थान से संयोजित कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए वह पात्र पितामहस्थानीय माहेश्वर के हाथ में दे॥१७॥ महेशस्वरूप पितामह को प्रपितामह के साथ संयोजित कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए कर्ता पूर्व की भाँति उस पात्र को प्रपितामहस्थानीय माहेश्वर को सौंपे॥१८॥ इसके बाद सदाशिवस्वरूप प्रपितामह को वृद्धप्रपितामह के साथ संयुक्त कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए कर्ता उस स्थान पर बैठे हुए माहेश्वर को उक्त पात्र सौंपे॥१९॥ शिवस्वरूप उस परम

---

३. "सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥" (महाना० १५ अनु०)।

४. "ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोऽम्॥" (महाना० १९ अनु०)।

शिवस्वरूपममलं तं वृद्धप्रपितामहम् ।
अरूपे परमे शैवे तत्त्वे संयोजयाम्यहम् ॥२०॥
इति ब्रुवाणस्तमिमं मयि लीनं विभावयेत् ।
एवमुक्तविधानेन चतुर्थो विनिवर्तते ॥२१॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे द्वादशाहविधिकथनं नाम सप्तमः पटलः ॥७॥

निर्मल वृद्धप्रपितामह को रूपरहित उस परम शिव-तत्त्व के साथ मैं संयोजित कर रहा हूँ॥२०॥ ऐसा कहता हुआ वह उस वृद्धप्रपितामह का शिवस्वरूप में लय हो गया है, ऐसी भावना करे। इस प्रकार इस तत्त्वसंयोजन की विधि से मृत व्यक्ति का चतुर्थ भाव निवृत्त हो जाता है॥२१॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह द्वादशाह की विधि को बताने वाला सप्तम पटल समाप्त हुआ॥७॥

★

अष्टमः पटलः

रुद्र उवाच

समस्तजगदाधार समस्तामरवन्दित ।
प्रकीर्णकविधिं ब्रूहि सर्वज्ञ परमेश्वर ॥१॥

परशिव उवाच

सोदरेषु पितुः कर्म कुर्वत्स्वन्यः स्थलान्तरात् ।
दशाहमध्य आगच्छेत् कृत्वा गतदिनक्रियाम् ।
समाधिवर्जं मिलितः शेषं कर्म समाचरेत् ॥२॥

तत्त्वसंयोजनाधिकारक्रमः

कनिष्ठेनाऽथवाऽन्येन कृतेऽपि पितृकर्मणि ।
कुर्यादुदकदानं च तत्त्वसंयोजनं सुतः ।
अग्रजेन कृतं कर्म नानुजेन पृथक् कृतिः ॥३॥

रुद्र का प्रश्न—

हे समस्त जगत् के आधार, समस्त देवताओं के द्वारा वन्दित, सर्वज्ञ परमेश्वर! अब आप मुझे प्रकीर्णक छूटी हुई विधियों को बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर—

अपने [1]सगे भाइयों के द्वारा पिता का और्ध्वदेहिक संस्कार करते समय बाहर से यदि अन्य भ्राता दस दिन के बीच में आजाता है, तो उसे समाधि संस्कार को छोड़कर विगत दिनों के सारे कृत्यों को करने के उपरान्त आगे के कार्य साथ में मिलकर करने चाहिये ॥२॥

कनिष्ठ अथवा अन्य भ्राता के द्वारा सारे पितृ-कर्मों के कर लेने पर भी ज्येष्ठ पुत्र को चाहिये कि वह उदकदान और तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया स्वयं करे। ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा इन विधियों के सम्पादित कर लेने पर कनिष्ठ भ्राता को यह सब पुनः नहीं करना पड़ता ॥३॥

---

१. ठीक इसी तरह के विधान धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में भी मिलते हैं। देखिये—धर्मशास्त्र का इतिहास (भा० ३, पृ० ११४९-११५३)।

तत्त्वयोजने विशेषः

श्राद्धकर्तुर्यदा भार्या ह्याशौचान्ते रजस्वला ।
श्राद्धशेषं प्रकुर्वीत विसृजेत् तत्त्वयोजनम् ॥४॥
तत्त्वसंयोजने प्राप्ते मृतपत्नी रजस्वला ।
तत्त्वसंयोजनं न स्यात् तत्कुर्यात् पञ्चमेऽहनि ॥५॥

क्लीबादीनां तत्त्वसंयोजनं नास्ति

तत्त्वसंयोजनं नैव क्लीबानां दुष्टयोषिताम् ।
अद्वादशवयस्कानां मृतानां ब्रह्मचारिणाम् ॥६॥
नैष्ठिकानां यतीनां च कार्येशानबलिस्तथा ।
तत्त्वसंयोगरहिते न प्रत्याब्दिकमिष्यते ॥७॥

पार्वणाराधनादिकम्

अदैवं पार्वणसमं सोदकुम्भमधर्मकम् ।
संकल्पविधिना कार्यमन्वहं त्वाब्दिकावधि ॥८॥
तत्त्वसंयोजनादूर्ध्वं वत्सरं वा तदर्धकम् ।
नान्यत् कुर्यादष्टकायाः पार्वणाराधनं सुतः ॥९॥

श्राद्धकर्ता की पत्नी आशौच पूरा हो जाने पर यदि रजस्वला हो जाती है, तो श्राद्ध के बचे कार्य को तो पूरा कर ले, किन्तु तत्त्वसंयोजन की विधि को उस समय छोड़ दे ॥४॥ तत्त्वसंयोजन करते समय मृतक की पत्नी यदि रजस्वला हो गई है, तो ऐसी स्थिति में पाँचवें दिन उसके शुद्ध हो जाने पर तत्त्वसंयोजन करे ॥५॥

नपुंसक व्यक्तियों का, दुष्ट स्त्रियों का, बारह वर्ष से कम उम्र में मृत बालक का और ब्रह्मचारी का तत्त्वसंयोजन संस्कार नहीं किया जाता ॥६॥ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने वालों और यतियों के लिये ईशान बलि का विधान है। तत्त्वसंयोजन की प्रक्रिया जहाँ पूरी नहीं हुई है, वहाँ वार्षिक श्राद्ध का भी विधान नहीं है ॥७॥

पितृकार्य की सारी विधि पार्वण श्राद्ध की पद्धति से पूरी की जाती है। उदककुंभ आदि सभी पितृकार्यों को वार्षिक श्राद्ध के सम्पन्न होने तक संकल्प के साथ करना चाहिये ॥८॥ तत्त्वसंयोजन के हो जाने के बाद पूरे वर्ष भर अथवा

तत्त्वसंयोजनवशान्महेशत्वयुजः पितुः ।
प्रत्यब्दं प्रतिमासं च कुर्यात् पार्वणवत् सुतः ॥१०॥
पाकशेषं न यो भुञ्ज्याद् दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
सम्यगाचरितं वाऽपि तस्य तत् स्यान्निरर्थकम् ॥११॥
नक्तव्रते च नियते संकटे राहुदर्शने ।
रात्रावपि विधेयं स्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितैः ॥१२॥
उपरागे पैतृके च तीर्थे दर्शे च संक्रमे ।
पितॄन् संतर्पयेद् धीमान् साक्षतैर्विमलैर्जलैः ॥१३॥

आराधनलक्षणम्

पित्रादयो महेशादिरूपा यत्र हि पैतृके ।
आराध्यन्ते तु भक्त्या तदाराधनमुदीरितम् ॥१४॥

छः मास तक पुत्र को चाहिये कि वह [२]अष्टका के अतिरिक्त पार्वणाराधन[३] न करे॥९॥ तत्त्वसंयोजन विधि के सम्पन्न हो जाने से महेशता को प्राप्त अपने पिता के लिये पुत्र को प्रतिवर्ष और प्रतिमास पार्वण श्राद्ध की प्रक्रिया पूरी करनी चाहिये॥१०॥ देवसंबन्धी और पितृसंबन्धी कार्यों के अवसर पर बने भोजन के शेष भाग का यदि कर्ता प्रसाद नहीं लेता, तो वह सब विधिपूर्वक क्रिया कार्य भी व्यर्थ हो जाता है॥११॥ नक्तव्रत का पालन करने पर, नियत समय में संकट के उपस्थित हो जाने पर, ग्रहण के अवसर पर श्राद्ध श्रद्धापूर्वक रात्रिवेला में भी किया जा सकता है॥१२॥ ग्रहण के अवसर पर, पैतृक तीर्थों में, दर्श (अमावस्या) तिथि में और संक्रान्ति के अवसर पर बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह अक्षत के साथ निर्मल जल से पितरों को तृप्त करे॥१३॥

---

२. हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर चार अष्टमियों में कर्तव्य श्राद्ध अष्टका के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति और पितृगणों के निमित्त अपूप और शाक से श्राद्ध किया जाता है। धर्मशास्त्र का इतिहास (भा० ३, पृ० १२०७) देखिये।

३. पिता, पितामह और प्रपितामह को उद्दिष्ट कर किये गये श्राद्ध का नाम पार्वण है। अन्य सभी श्राद्धों में यह प्रधान है। धर्मशास्त्र का इतिहास, भा० ३, (पृ० १२४०-१२७७) में इसका विस्तार से वर्णन है।

तत्र नन्दिमहाकालौ विश्वेदेवौ प्रकीर्तितौ ।
पित्रर्थं कीर्तिता एते महेशश्च सदाशिवः ।
शिव इति त्रयः शम्भुः संरक्षक इति स्मृतः ॥१५॥

द्विविधं श्राद्धमङ्गानि च

श्राद्धं तु द्विविधं प्रोक्तं पितृमल्लोकवासिनाम् ।
पितृणां तृप्तिजनकं पितृलोकनिवासिनाम् ॥१६॥
श्राद्धस्याङ्गानि वक्ष्यामि शृणु रुद्र यथाक्रमम् ।
होमस्त्यागस्तथा पिण्डो विश्वेदेवास्तिलाः कुशाः ।
उद्देशः पितृदेवानामर्घ्यपात्रं च रक्षकम् ॥१७॥
अपसव्यं च विकिरं श्राद्धाङ्गमिति कीर्तितम् ।
मल्लोकवासिनां पुत्र पितृणां प्रवदाम्यथ ॥१८॥

श्राद्धकर्मणि निषिद्धम्

होमः पिण्डस्तिला दर्भा विकिरं चार्घ्यपात्रकम् ।
अपसव्यं तथा सप्त निषिद्धं श्राद्धकर्मणि ॥१९॥

पैतृक श्राद्ध के अवसर पर जहाँ पिता इत्यादि की महेश आदि के रूप में भक्तिपूर्वक आराधना की जाती है, उसे ही आराधन कहा गया है॥१४॥ इस आराधन में नन्दी और महाकाल विश्वेदेव कहे गये हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह को क्रमशः महेश्वर, सदाशिव और शिव कहा जाता है। शंभु इन सबके संरक्षक हैं॥१५॥

श्राद्ध दो प्रकार का होता है–एक तो पितृलोक में निवास करने वालों का, दूसरा शिवलोक में निवास करने वालों का। पितृलोक में निवास करने वाले पितरों की श्राद्ध के जिन अंगों में तृप्ति होती है॥१६॥ अब मैं श्राद्ध के उन अंगों का वर्णन करूँगा। हे रुद्र! तुम क्रमशः उनको सुनो–होम, त्याग, पिण्ड, विश्वेदेव, तिल, कुशा, पितरों का स्थान, अर्घ्यपात्र, रक्षासूत्र, अपसव्य और विकिर – ये सब पितृलोकनिवासी पितरों के श्राद्ध के अंग हैं। अब मैं शिवलोक में निवास करने वाले पितरों का वर्णन कर रहा हूँ॥१७-१८॥

होम, पिण्ड, तिल, दर्भ, विकिर, अर्घ्यपात्र और अपसव्य–ये सात वस्तुएँ शिवलोक के निवासी पितरों के लिये निषिद्ध हैं॥१९॥ विश्वेदेव, पितरों का

विश्वेदेवाः पित्रुद्देशस्त्यागः संरक्षकोऽपि च ।
श्राद्धाङ्गानि भवन्त्येव तस्मात् तान्युपयोजयेत् ॥२०॥

शाम्भवव्रतिनां सापिण्ड्यं नास्ति

शाम्भवव्रतिने श्राद्धं सपिण्डं विदधाति यः ।
कुलमासप्तमं तस्य नरके निपतेद् ध्रुवम् ॥२१॥

त्रिविधमाराधनम्

गृह्याद्यधिकृतं चैव निराभार्याधिकारिकम् ।
सांकल्पिकमिति तथा प्रोक्तमाराधनं त्रिधा ॥२२॥
गृह्याद्यधिकृते कार्यं विश्वेदेवादिसंयुतम् ।
विश्वेदेवान् पित्रुद्देशं त्यागं संरक्षकं तथा ।
वर्जयित्वैव कर्तव्यं निराभार्याधिकारिकम् ॥२३॥
विश्वेदेवान् रक्षकं च त्यागमावाहनादिकम् ।
त्यक्त्वा संकल्पमात्रेण कारुण्यानां विधीयते ॥२४॥

स्थान, त्याग और रक्षासूत्र इन चार श्राद्धांगों की स्थिति तो यहाँ भी रहती है। इस लिये इनका उपयोग अवश्य करे॥२०॥

जो व्यक्ति शांभवव्रत का पालन करने वाले का सपिण्ड श्राद्ध करता है, वह अपने सात पीढ़ी तक के लोगों के साथ निश्चित ही नरक में गिरता है॥२१॥

यह आराधन गृहस्थ-संबन्धी, निराभारी-संबन्धी और सांकल्पिक के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है॥२२॥ गृहस्थ-संबन्धी आराधन विश्वेदेव आदि सभी अंगों से संयुक्त रहता है। निराभारी से संबद्ध आराधन में विश्वेदेव, पित्रुद्देश, त्याग और रक्षासूत्र इत्यादि पूरी तरह से वर्जित हैं॥२३॥ विश्वेदेव, रक्षासूत्र, त्याग और आवाहन के विना ही केवल संकल्प मात्र से [४]कारुणिकों का आराधन किया जाता है॥२४॥

---

४. सिद्धान्तशैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक नामक चतुर्विध शैवों के परिचय के प्रसंग में भास्कर के ब्रह्मसूत्र भाष्य में करुणासिद्धान्ती सम्प्रदाय निर्दिष्ट है। प्रस्तुत स्थल पर उसी सिद्धान्त का उल्लेख मान कर कारुणिक पद से जंगम का ग्रहण किया जा सकता है।

आराधने माहेश्वरार्चा

शैवशास्त्रविशेषज्ञः षट्स्थलज्ञानकोविदः ।
त्रिकालपूजाभिरतो लिङ्गनिष्ठापरायणः ॥२५॥
माहेश्वरोऽर्चनीयः स्यान्मुख्य आराधने स्मृतः ।
एककालार्चनासक्तो मध्यमः परिकीर्तितः ॥२६॥
अनर्पितं च यो भुङ्क्ते नैकदा लिङ्गमर्चति ।
मद्भक्तानपि यो द्वेष्टि वर्जनीयः स सर्वदा ॥२७॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे प्रकीर्णकविधिकथनं नाम अष्टमः पटलः ॥८॥

शैवशास्त्रों की विशेषताओं को जानने वाले, षट्स्थल संबन्धी ज्ञान में निपुण, तीनों कालों में शिव की पूजा में लगे रहने वाले, लिंग में निष्ठाभक्ति से सम्पन्न माहेश्वरों (जंगमों) की ही आराधन में मुख्य पूजा की जाती है। केवल एक समय ही जो अर्चन आदि करता है, वह माहेश्वर मध्यम कोटि का माना गया है ॥२५-२६॥ बिना भगवान् को समर्पित किये जो भोजन कर लेता है, दिन में एक बार भी लिंग की पूजा नहीं करता और ऊपर से मेरे भक्तों के साथ द्वेषभाव रखता है, ऐसा माहेश्वर (जंगम) आराधन क्रिया में सर्वदा वर्जनीय है, अर्थात् आराधन करते समय ऐसे माहेश्वरों को निमन्त्रित नहीं करना चाहिये ॥२७॥

इस तरह मकुटागम के चर्यापाद का यह प्रकीर्णक विधि को बताने वाला आठवां पटल समाप्त हुआ ॥८॥

नवमः पटलः

रुद्र उवाच

स्वलीलाकल्पितानल्पजगज्जाल निराकुल ।
प्रत्याब्दिकविधानं मे कृत्स्नं ब्रूहि जगत्पते ॥१॥

परशिव उवाच

प्रत्याब्दिकाराधनविधानम्

विधाय नित्यकर्माणि विप्रानाहूय सादरम् ।
दीपं प्रज्वाल्य गन्धाद्यैरलङ्कृत्य प्रणम्य च ॥२॥
सभस्मघुण्टिकं चैव ताम्बूलं दक्षिणान्वितम् ।
गृहीत्वा नन्दिकेशादीन् नमस्कुर्याद् गणेश्वरान् ॥३॥
नम आव्याधिनीभ्य इत्यथ कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
त्रिसंख्यं घण्टिकानादं कारयन् स्थिरचेतसा ॥४॥
उपस्पृश्याथ संकीर्त्य देशकालौ यथाक्रमम् ।
पितुरैक्यदिनाभिख्याराधनं तृप्तिसाधनम् ।
करिष्य इति संकल्प्य कलशं चाभिपूज्य च ॥५॥

रुद्र का प्रश्न—

अपनी लीला से अनन्त जगज्जाल का निर्माण करने पर भी स्वयं किसी भी व्याकुलता से रहित हे जगत्पते! अब आप मुझे सांवत्सरिक श्राद्ध की विधि बताइये ॥१॥

परशिव का उत्तर—

नित्य कर्म को पूरा करके आदरपूर्वक ब्राह्मणों को निमन्त्रित करते समय दीपक जला कर, गन्ध आदि से अलंकृत करके और प्रणाम करके ॥२॥ एक पात्र में भस्म, ताम्बूल और दक्षिणा लेकर नन्दिकेश आदि गणेश्वरों को निमन्त्रण देते समय उनके पास जाकर नमस्कार पूर्वक भस्म आदि अर्पित कर उन्हें निमन्त्रण दे ॥३॥ तब 'नम आव्याधिनीभ्य'[1] इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करते हुए और स्थिर चित्त से तीन बार घंटी बजाते हुए उन माहेश्वरों की प्रदक्षिणा करे ॥४॥ अब आचमन

---

१. "नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमः" (माध्य० १६।२४)।

इमा माहेशपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः ।
इति द्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य क्षणान् दद्याद् यथाक्रमम् ॥६॥

सप्तद्रव्यवर्जनम्

अपसव्यं तिलान् दर्भान् पिण्डदानाग्निकर्मणी ।
विकिरं चार्घ्यपात्रं च शैवे सप्त विवर्जयेत् ॥७॥

पित्राराधनदेवताः

पिता महेश्वरः प्रोक्तस्तत्पिता च सदाशिवः ।
प्रपितामहः शिवश्चैते पित्राराधनदेवताः ॥८॥

आराधनकर्मणि वैषम्यवर्जनम्

तपसा विद्यया वाऽऽया अर्हन्त्युत्तममासनम् ।
दानभोजनपूजासु न वैषम्यं शुभावहम् ॥९॥

कर देश और काल का यथाक्रम संकीर्तन कर मैं अपने पिता का ऐक्यापादन रूप कर्म करूँगा, जिससे कि उनको तृप्तिलाभ हो, ऐसा संकल्प करके कलश की पूजा करे ।।५।। सारे पापों का क्षय करने वाली यह सामग्री माहेश्वरों (जंगमों) की पूजा के लिये है, ऐसा कहते हुए सारी पूजासामग्री का प्रोक्षण करे और फिर एक एक करके उसे समर्पित करे ।।६।।

अपसव्य, तिल, दर्भ, पिण्डदान, हवन, विकिर और अर्घ्यपात्र—श्राद्ध के ये सात अंग लिंग-दीक्षा से सम्पन्न शैव के श्राद्ध में वर्जित हैं ।।७।।

पिता महेश्वरस्थानीय कहा गया है, पितामह सदाशिवस्वरूप और प्रपितामह साक्षात् शिव है। पितृकर्म के ये ही तीन आराध्य देव हैं ।।८।।

तपस्या के द्वारा अथवा श्रेष्ठ विद्या के द्वारा व्यक्ति उन्नत आसन को प्राप्त करता है, किन्तु दान, भोजन और पूजा के अवसरों पर ऐसी विषमता अच्छी नहीं मानी जाती। इसका भाव यह है कि दान, भोजन और पूजा के अवसरों पर विद्वान्-अविद्वान् के भेद के बिना सबको समान आसन पर बिठाना चाहिये ।।९।।

पुष्पाक्षतादिदानेन माहेश्वरनिमन्त्रणम्

नन्द्यादिसंज्ञिनां विश्वेदेवानां स्थानके तथा ।
महेश्वरादिसंज्ञानां पितॄणां स्थानकेऽपि च ॥१०॥
संरक्षकस्य शम्भोश्च स्थाने पुष्पाक्षतान् क्षणान् ।
दत्त्वा ब्रूयात् प्रसादश्च भवद्भिः कार्य इत्यपि ॥११॥
निमन्त्रिता मौनयुजो मद्ध्यानासक्तचेतसः ।
तृप्तिमन्तश्च वर्तेरन् न चेन्निरयमाप्नुयुः ॥१२॥

मण्डलद्वयरचनम्

पादार्चनाय रचयेद् बाह्यमान्तरमेव वा ।
अरङ्गमेति मन्त्रेण मण्डलद्वितयं तथा ॥१३॥
मध्ये तयोरन्तरेण कर्तव्यं वै षडङ्गुलम् ।
यथा पादोदकस्पर्शो न भवेत् पितृदेवयोः ॥१४॥
मण्डलद्वयमारच्य पाद्यार्थं पितृदेवयोः ।
तत्स्थाने भस्मगन्धाद्यैरर्चयेत् सकलैरपि ॥१५॥

नन्दी और महाकाल नामक विश्वेदेवों के स्थान पर और महेश्वर आदि पितरों के स्थान पर, इसी तरह से संरक्षक शंभु के स्थान पर पुष्प, अक्षत और क्षणों को देकर कहे कि आप सब मेरे ऊपर अनुग्रह करें ॥१०-११॥ निमन्त्रित माहेश्वरों को मौन धारण कर शिवध्यान में आसक्त चित्त होकर सन्तुष्ट भाव से रहना चाहिये। ऐसा न करने पर वे नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥१२॥

पादपूजन के लिये [२]'अरङ्गम' मन्त्र से बाह्य तथा आन्तर इस प्रकार दो प्रकार के मण्डलों की रचना करे ॥१३॥ इन दोनों मण्डलों के बीच में छः अंगुल का अन्तर रखना चाहिये, जिससे कि पादपूजन के लिये उपयोग में आने वाले जल का पितरों और देवताओं के स्थान से स्पर्श न हो ॥१४॥ उक्त दोनों मण्डलों की रचना कर पितरों और देवताओं के निमित्त पाद्यार्घ्य देना चाहिये और उसी स्थान पर भस्म, गन्ध आदि सभी पूजा के उपकरणों से उनकी पूजा करनी चाहिये ॥१५॥

---

२. "तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥" (माध्य० ११।५२)

निमन्त्रितमाहेश्वराणां सत्कारादिकम्

स्वागतं परिपृच्छ्यैव दत्त्वा चासनमप्यथ ।
शन्नो देवीरिति पठन् पादौ प्रक्षालयेदपि ॥१६॥
पादाम्बु स्वशिरस्युक्ष्य पादावुद्वर्त्य वाससा ।
भस्मना साक्षतैर्गन्धैः पुष्पविल्वादिकैरपि ॥१७॥
धूपदीपनिवेद्यैश्च मन्त्रपुष्पेण चार्चयेत् ।
विश्वेदेवान् पितृन् पश्चादथ संरक्षकं क्रमात् ।
पादौ प्रक्षाल्याचमेयुः कर्ता भोक्तार एव च ॥१८॥
प्राणानायम्याथ कर्ता हस्तार्चापात्रगाक्षतान् ।
गृहीत्वा विष्टरान् दद्यात् स्वाहां स्वधां समुच्चरन् ॥१९॥

विश्वेदेवाद्यावाहनम्

विश्वेदेवान् पितृंश्चैव नामगोत्रपुरस्सरम् ।
आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः समभ्यर्च्य यथाक्रमम् ।
वासोभिश्च हिरण्येन यथाशक्ति सुतोषयेत् ॥२०॥

आगत माहेश्वरों का स्वागत कर उनको आसन कर बैठाना चाहिये। तब 'शन्नो देवीः'[३] मन्त्र का पाठ करते हुए उनके चरणों को धोना चाहिये॥१६॥ उस चरणोदक को अपने सिर पर छिड़क कर उनके चरणों को वस्त्र से पोंछ देना चाहिये। तब भस्म, अक्षत, गन्ध, पुष्प, विल्वपत्र आदि से॥१७॥ धूप, दीप, नैवेद्य और मन्त्रपुष्पांजलि से माहेश्वरों के चरणों की पूजा करे। इसके पश्चात् विश्वेदेव और पितृगण के साथ संरक्षक भगवान् शिव के भी चरणों का प्रक्षालन कर श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता माहेश्वर उस चरणोदक का प्राशन करें॥१८॥ इसके बाद श्राद्धकर्ता प्राणायाम करके पात्रस्थित अक्षतों को हाथ में लेकर देवताओं के निमित्त स्वाहा और पितरों के निमित्त स्वधा का उच्चारण कर विष्टरों[४] को समर्पित करे॥१९॥

विश्वेदेवों एवं पितरों को नाम और गोत्र के उच्चारण के साथ आवाहित कर

---

३. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः॥" (माध्य० ३६।१२)
४. "विंशत्तन्तुकृता वेणी बर्हिषां विष्टरः स्मृतः" (क्रि० ६।५१) मृगेन्द्रागम के इस वचन के अनुसार कुशा के बीस तन्तुओं को केशवेणी के आकार में गूँथ कर यह बनाया जाता है।

विकीर्य भस्म भोज्येषु तन्महेशेति चामनन् ।
आराधने गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं महेश्वरम् ।
महेशादीन् पितॄन् ध्यात्वा कुर्यादाराधनं ततः ॥२१॥

माहेश्वरेभ्यो भोजनपर्यवेषणम्

इति मन्त्रं समुच्चार्य पाकदोषनिवृत्तये ।
पञ्चब्रह्माभिधैर्मन्त्रैराज्यमन्नेऽभिघारयेत् ॥२२॥
पात्रेषु भक्ष्यभोज्यादि पर्याप्तं निक्षिपेदपि ।

प्रसादेऽङ्गुष्ठनिवेशनम्

माहेश्वरस्स्वेष्टलिङ्गसमर्पणविधेरथ ॥२३॥
कर्ता देव सवित इत्युच्चरन् परिषेचनम् ।
पात्रस्य कृत्वा पृथिवी ते पात्रं यच्छंयोरिति ॥२४॥

क्रम के अनुसार गन्ध, पुष्प आदि से उनकी पूजा कर वस्त्रदान और सुवर्णदान से अपनी शक्ति के अनुसार उनको सन्तुष्ट करना चाहिये ॥२०॥ भोज्य पदार्थों पर भस्म छिड़क कर यह ध्यान करे कि यह सब कुछ महेश्वर के लिये है। तब "आराधन कर्म के प्रारंभ में गयातीर्थ का और भगवान् महेश्वर का ध्यान कर तथा इसी तरह से महेश आदि पितरों का ध्यान कर आराधन कर्म को प्रारंभ करे" ॥२१॥

इस २१ वें श्लोक में उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए पाकदोष की निवृत्ति के लिये पंचब्रह्म[५] नामक पाँच मन्त्रों से अन्न में आज्य का अभिघारण[६] करे ॥२२॥ इसके उपरान्त भोजनपात्र में पर्याप्त मात्रा में भक्ष्य, भोज्य आदि परोसे। इसके बाद माहेश्वर अपने इष्टलिंग को भोग लगावे। इसके बाद आराधन-कर्ता 'देव सवितः'[७] मन्त्र का उच्चारण करते हुए भोजनपात्र को प्रोक्षित करे। तब "पृथ्वी

---

५. पंचब्रह्म मन्त्रों के प्रतीक क्रियापाद द्वितीय पटल की ७ वीं टिप्पणी में दे दिये गये हैं।
६. वैदिक कर्मकाण्ड में एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक घृत की धारा का निरन्तर क्षारण व्याघारण कहलाता है। वही क्रिया अभिघारण पद से यहाँ कही गई है।
७. "देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु स्वाहा॥" (माध्य० ९।१)।
८. "पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्रह्मणस्त्वा मुखे जुहोमि स्वाहा"।

त्र्यम्बकं च पठन्नेव माहेश्वरकरं ततः ।
गृहीत्वैव प्रसादे तु तदङ्गुष्ठं निवेशयन् ॥२५॥

स्वाहास्वधाभ्यां देवपितृतर्पणम्

भोक्तारमन्नमात्मानं ब्रह्मेत्येव विभावयन् ।
भुवं गयां शूलधरं भोक्तारं भावयन्नपि ॥२६॥
नाम गोत्रं च सम्बन्धमुच्चार्य च प्रसादकम् ।
स्वाहां स्वधां यथायोगं नमश्च न ममेति च ।
ब्रुवन् समर्पयेद् देवपितृभ्यश्च यथाक्रमम् ॥२७॥

पुनरावृत्तिरहितपितृतृप्तिनिरूपणम्

गयायां श्रीरुद्रपादे क्षेत्रेषु श्रीनगादिषु ।
दत्तमस्त्वित्युद्गिरन् वै साक्षतं विसृजेज्जलम् ॥२८॥
ततः संकल्प्य च कृतेनैक्याहाराधनेन च ।
पितृणामक्षया तृप्तिः पुनरावृत्तिवर्जिता ॥२९॥

ते पात्रम्', 'यच्छंयो', 'त्र्यम्बकम्'[९] इत्यादि मन्त्रों का पाठ करते हुए माहेश्वर के हाथ को पकड़ कर उस परोसे हुए प्रसाद में उसके [१०]अंगूठे को डाल दे॥२३-२५॥

भोक्ता को, अपने को और अन्न को भी ब्रह्म का ही स्वरूप मान कर, पृथ्वी, गया, शूलधारी भगवान् शिव और भोक्ता का ध्यान करते हुए॥२६॥ नाम, गोत्र और संबन्ध का उच्चारण करते हुए उस प्रसाद को देवता के निमित्त स्वाहा और पितरों के निमित्त स्वधा का तथा 'नमः, न मम' आदि का भी यथायोग्य उच्चारण करते हुए उनको समर्पित करे॥२७॥

गया में श्रीरुद्र की पादुका पर तथा श्रीशैल आदि पवित्र क्षेत्रों पर दिये गये अन्न के समान यह प्रसाद फलदायी हो, ऐसा कहते हुए अक्षत के साथ जल छोड़े॥२८॥ पितरों के साथ मृत व्यक्ति की एकता के सम्पादन के लिये किये गये इस द्वादशाह कृत्य से पितरों को पुनरावृत्ति (जन्म) से रहित अक्षय प्रीति प्राप्त हो, ऐसा संकल्प करके॥२९॥ इसी तरह से इस कृत्य से सदा सर्वदा के

९. "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥" (माध्य० ३।६०)
१०. इसका प्रयोजन आगे ३९ वें श्लोक में देखिये।

शाश्वती शिवसायुज्यसिद्धिर्भूयादिति ब्रुवन् ।
सर्वमेतद् यथाकालं दत्तमस्त्विति वाचयेत् ॥३०॥

आपोशानप्रदानक्रमः

दत्त्वा चापोशनं देवपितृभ्यश्च यथाक्रमम् ।
ईशानः पितृरूपेण महादेवो महेश्वरः ॥३१॥
प्रीयतां भगवानीशः परमात्मा सदाशिवः ।
प्रीयतां पितृरूपीश इत्युक्त्वा जलमुत्सृजेत् ॥३२॥

माहेश्वरप्रार्थनम्

श्रद्धायां प्राण इत्याद्यैर्जुहुयुः प्राण आहुतीः ।
आमनन् मधु वातेति मध्विति त्रिः समुच्चरन् ।
यथासुखं जुषध्वमित्युक्त्वा तैः प्रतिवाचयेत् ॥३३॥
मन्त्रमध्ये क्रियामध्ये शम्भोः स्मरणपूर्वकम् ।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥३४॥

लिये शिव के साथ सायुज्य की सिद्धि प्राप्त हो, ऐसा कहते हुए यह सब कुछ यथासमय दिया गया है, ऐसा भी कहे ॥३०॥

इसके बाद देवताओं और पितरों के निमित्त क्रम के अनुसार आचमन के लिये जल देना चाहिये। पितृरूपी ईशानस्वरूप महादेव भगवान् महेश्वर इससे प्रसन्न हों, सबके स्वामी परमात्मा भगवान् सदाशिव प्रसन्न हो, पितृरूपी भगवान् ईश प्रसन्न हो, ऐसा कह कर इनके लिये जल छोड़े ॥३१-३२॥

तब [11]'श्रद्धायां प्राणः' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करते हुए निमन्त्रित महेश्वर अपने प्राण में आहुतियाँ दें, अर्थात् भोजन प्रारंभ करें। [12]'मधु वाता, मधु' इत्यादि तीन ऋचाओं का पाठ करता हुआ श्राद्धकर्ता माहेश्वरों से कहे कि आप लोग आराम से बिना किसी जल्दी-बाजी के भोजन करे। उनसे भी कहलवावे कि हम आराम से भोजन करेंगे ॥३३॥ मन्त्र का जप करते समय और किसी कार्य को करते

---

११. "श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतं प्राणमन्नेनाप्यायस्व" (महाना० ३९ अनु०) इत्यादि श्रुति यहाँ अभिप्रेत है।
१२. "मधुवाता ऋतायते, मधुनक्तमुतोषसः, मधुमान्नो वनस्पतिः" (माध्य० १३।२७-२९) ये तीन मन्त्र यहाँ परिगृहीत हैं।

अपेक्षितं याचितव्यं त्याज्यं चैवानपेक्षितम् ।
उपविश्य सुखेनैव भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः ॥३५॥
उक्त्वा प्रसादभोगस्य काले तेषां निषद्गणान् ।
जाबालाद्यधिश्रवणमन्त्रान् संश्रावयेदपि ॥३६॥

उत्तरापोशनम्

तेषां प्रसादभोगान्ते मधु वातेति मध्विति ।
तृप्ताः स्थेति च तानुक्त्वा तृप्ताः स्म इति वाचयेत् ॥३७॥
उत्तरापोशनं दत्त्वा करशुद्धेरनन्तरम् ।
उत्तरान् पाठ्येन्मन्त्रान् श्रद्धायां प्राण आदिमान् ॥३८॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ह्यङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।
ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुक् ॥३९॥

भोजनानन्तरमनुष्ठानक्रमः

इत्युक्वा तैराशिषश्चाक्षय्यमाराधनं त्विति ।
वाचयित्वा ऋचे त्वा पृथिवी शान्तेति चामनन् ॥४०॥

समय यदि भगवान् शिव का स्मरण किया जाता है, तो उस कर्म का करोड़ गुना फल मिलता है॥३४॥ माहेश्वरों को भोजन करते समय अपनी रुचि की वस्तु को माँगना चाहिये और अनपेक्षित पदार्थ को छोड़ देना चाहिये। शान्तिपूर्वक बैठ कर स्वस्थ चित्त से भोजन करना चाहिये॥३५॥ प्रसाद-ग्रहण करते समय उपनिषद् के मन्त्रों का पाठ करते हुए जाबाल आदि श्रुतियों के श्राद्ध संबन्धी मन्त्रों को सुनाना चाहिये॥३६॥

प्रसाद का भोग लगा लेने पर, अर्थात् उन माहेश्वरों के भोजन कर लेने पर 'मधुवाता', 'मधु' इत्यादि मन्त्रों का वाचन कर क्या आप लोग तृप्त हैं, इस प्रश्न के उत्तर में हाँ, हमलोग तृप्त हैं, ऐसा कहलवाना चाहिये॥३७॥ भोजन कर लेने के उपरान्त जल देकर हाथ की शुद्धि करानी चाहिये, अर्थात् उनके हाथ धुलाना चाहिये और तब 'श्रद्धायां प्राणः' इत्यादि मन्त्रों का माहेश्वरों से पाठ कराना चाहिये॥३८॥ "यह जीवात्मा अंगुष्ठ-प्रमाण है और अंगुष्ठ में ही इसकी स्थिति है। यह ईश्वर सारे जगत् का प्रभु है। यह विश्व का पालन करने वाला प्रभु इस श्राद्धभोजन से प्रसन्न हो"॥३९॥

तान् त्रिः प्रदक्षिणं कृत्वा तैः स्वाहां च स्वधामपि ।
वाचयित्वा ततो ब्रूयादुपचारान् यथोचितम् ॥४१॥
अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाभिवन्दनात् ।
अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहाद् दिवम् ॥४२॥
पत्रशाखादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः ।
तत् क्लेशजातं चित्तेषु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ ।
इति प्रणम्य तेभ्यश्च गृह्णीयादाशिषः पुनः ॥४३॥

माहेश्वरेभ्य आशीर्वचनग्रहणम्

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीत्या नृणां पितामहाः ।
इत्युक्त्वा गच्छतो विप्रानासीमान्तमनुव्रजेत् ॥४४॥
महालयाराधने च तीर्थाराधनके तथा ।
संकल्प एव भिद्येत प्रयोगे न भिधा भवेत् ॥४५॥

इस मन्त्र का पाठ करके, तुम्हारे द्वारा किया गया यह पितरों आराधन-कर्म अक्षय फल देने वाला हो, ऐसा उन माहेश्वरों से कहलवा कर [१३] 'ऋचे त्वा', 'पृथिवी शान्ता' इत्यादि मन्त्रों का उनसे पाठ करावे ॥४०॥ तब उन माहेश्वरों की तीन बार प्रदक्षिणा करे और इनसे स्वाहा और स्वधा का वाचन कराकर उनके सामने आगे बताये गये आदरसूचक वाक्यों का उच्चारण करे ॥४१॥ आज आप लोगों के चरणकमलों की पूजा करने से मेरा जन्म सफल हो गया। आज आप लोगों के अनुग्रह से मेरे वंशजों को स्वर्ग प्राप्त हो गया ॥४२॥ आप जैसे महानुभावों को मैंने पत्र, शाखा आदि का भोजन करा कर क्लेश दिया है। उस क्लेश को आप अपने चित्त से भुला देकर मुझे क्षमा कर दें। ऐसा कहने के उपरान्त उनको प्रणाम करे और उनसे पुनः आशीर्वाद ले ॥४३॥

आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और नाना प्रकार के ऐहिक सुखों को तथा राज्य को सन्तुष्ट हुए पितृगण प्रीतिपूर्वक प्रदान करें। ऐसा कहते हुए उन जाते हुए माहेश्वरों का सीमापर्यन्त अनुसरण करे ॥४४॥ इस महालय (श्राद्ध)

---

१३. "ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा" (माध्य० १३।३९)।

श्राद्धकर्मणि पित्राद्याराधनक्रमः

मातॄणां वा पितॄणां वा वर्गः प्रत्याब्दिके भवेत् ।
महालयाराधनादौ पित्राद्याः सर्व ईरिताः ॥४६॥
आदौ पिता तथा माता सापत्नी जननी तथा ।
मातामहाः सपत्नीका आत्मपत्न्यस्त्वनन्तरम् ॥४७॥
सुतभ्रातृपितृव्याश्च मातुलाश्च सभार्यकाः ।
दुहिता भगिनी चैकदौहित्रो भागिनेयकः ॥४८॥
पितृष्वसा मातृष्वसा जामाता भावुकः स्नुषा ।
श्वशुरः स्यालकश्चैव स्वामी च गुरुरिक्थिनौ ॥४९॥

माहेश्वरालाभे विष्टरेषु सर्वं कर्तव्यम्

यत्नेऽपि सर्वथाऽलाभे माहेशानां महेश्वर ।
विष्टरेषु निधायैव घण्टां वा भस्मघुण्टिकाम् ।
पादार्चनादिकं सर्वमाराधनमथाचरेत् ॥५०॥

की आराधना में और तीर्थों की आराधना में केवल संकल्प का ही भेद रहता है। प्रयोग में कोई भेद नहीं होता ॥४५॥

महालय (श्राद्धपक्ष) की प्रति वर्ष की आराधना में मातृवर्ग और पितृवर्ग की आराधना की जाती है। इनका क्रम भी शास्त्रों में बताया गया है ॥४६॥ सबसे पहले पिता तथा माता का आराधन किया जाता है और इसके बाद सौतेली माता का। इसके बाद सपत्नीक मातामह का और तब अपनी पत्नियों का क्रम आता है ॥४७॥ सपत्नीक पुत्र, भ्राता, चाचा, मामा का क्रम इसके बाद आता है। पुत्री, बहिन, दौहित्र और भागिनेय का क्रम इनके भी बाद रखा गया है ॥४८॥ बूआ, मौसी, जामाता, समधी, पुत्रवधू, श्वसुर, साला, स्वामी, गुरु और धन उधार देने वाले का क्रम इनके बाद आता है ॥४९॥

हे महेश्वर! प्रयत्न करने पर भी यदि आराधन के लिये माहेश्वर (जंगम) मिल ही न सकें, तो ऐसी अवस्था में कुशाओं से निर्मित विष्टर पर घंटा अथवा भस्म के गोले को रख कर वहीं पादार्चन आदि सारी क्रियाओं को करते हुए पितरों का यह आराधन कार्य सम्पन्न करे ॥५०॥ पितरों के लिये अर्पित भोज्य पदार्थ

भोज्यं च धेनवे दद्याद् विप्रेभ्यश्चैव दक्षिणाम् ।
कुर्वन्नेवं स लभत आराधनफलं महत् ॥५१॥

पित्राराधनफलकथनम्

विधिनाऽनेन कुरुते पित्रोराराधनं तु यः ।
आयुः श्रियं प्रजां लब्ध्वा शिवलोके महीयते ॥५२॥

अननुष्ठाने दोषः

नास्तिक्यादथवाऽऽलस्याद् यस्त्वेवं नानुतिष्ठति ।
काकयोनिशतं गत्वा स हि श्वा चाभिजायते ॥५३॥

इति श्रीमकुटागमे चर्यापादे प्रत्याब्दिकविधिकथनं नाम नवमः पटलः ॥९॥

गायों को और दक्षिणा ब्राह्मणों को दे देनी चाहिये। इस तरह से करने पर भी वह आराधन के महान् फल को पा लेता है॥५१॥

जो व्यक्ति यहाँ बताई गई विधि के अनुसार माता-पिता का आराधन (श्राद्ध कर्म) करता है, वह दीर्घ आयु, धन-सम्पत्ति और सन्तति का सुख प्राप्त कर शिवलोक में महान् आदर प्राप्त करता है॥५२॥

नास्तिकता के कारण अथवा आलस्यवश जो व्यक्ति इस पितरों के आराधन कर्म का अनुष्ठान नहीं करता, वह सौ बार काक योनि में जन्म लेकर अन्त में श्वान की योनि में पैदा होता है॥५३॥

इस प्रकार मकुटागम के चर्यापाद का यह वार्षिक श्राद्ध की विधि को बताने वाला नवाँ पटल समाप्त हुआ॥९॥

★

दशमः पटलः

रुद्र उवाच

अशेषजगदाधार निराधार कृपानिधे ।
ममास्ति विशयः कश्चिदाशौचविषये विभो ॥१॥
शाम्भवव्रतशुद्धेषु कथमाशौचसंगतिः ।
भवद्भावनया त्यक्तगात्रेषु व्रतसेविषु ॥२॥
अमृतेषु कथं नु स्यात् तनोराशौचसंगमः ।
एनं मे संशयं छिन्धि सर्वज्ञानैकसागर ॥३॥

परशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया वत्स सद्भक्तानुजिघृक्षुणा ।
तद् गोप्यमपि वक्ष्यामि सावधानमनाः शृणु ॥४॥

रुद्र का प्रश्न—

समस्त संसार के आधार होते हुए भी स्वयं निराधार, कृपा के सागर, सर्वत्र व्यापक हे परमशिव! आशौच विधि के संबन्ध में मुझे कुछ संशय है।।१।। शांभवव्रत का पालन करने से शुद्ध हुए व्यक्ति के शरीर का आशौच से संसर्ग कैसे हो सकता है? क्योंकि शांभवव्रत का अनुष्ठान करने वाले आपकी भावना करते करते अपना शरीर छोड़ते हैं।।२।। वे तो अमर हो जाते हैं। जब वे मरते ही नहीं, तब उनके शरीर से आशौच का संसर्ग कैसे होगा? हे सभी तरह के ज्ञानों के सागर! आप मेरे इस संशय को दूर कीजिये।।३।।

परशिव का उत्तर—

हे वत्स! सज्जन पुरुषों पर अनुग्रह करने की दृष्टि से तुमने यह ठीक प्रश्न किया है। इसका उत्तर बहुत गोपनीय है, तो भी मैं तुम्हें इसे बताऊँगा। तुम सावधानी से सुनो।।४।।

शाम्भवव्रतनिष्ठानामप्याशौचावाप्तिः

शाम्भवव्रतशुद्धानां मत्सेवाभिरतात्मनाम् ।
मुक्तिभाजां तनुत्यागहेतुकाशौचसंगमः ।
यद्यप्यसम्भाव्य एव प्राणिदोषाप्रकाशनात् ॥५॥
तथापि तेषां संसारसम्बद्धतनुयोगिनाम् ।
देहोत्पत्तिविनाशोत्थमाशौचमिह विद्यते ।
यतीनां तद्धि संसारयोगाभावान्न युज्यते ॥६॥
तस्मात् संसारसम्पर्को हेतुराशौचसंगतेः ।
तद्योगादस्ति व्रतिनामाशौचमिति निश्चिनु ॥७॥

आशौचे विद्यमानेऽपि नान्तरायोऽर्चने

आशौचे विद्यमानेऽपि नान्तरायोऽर्चनस्य तु ।
मदर्चा विघ्नविच्छेत्री दीक्षासामर्थ्ययोगतः ॥८॥

शांभवव्रत से पवित्र हुए, मेरी सेवा में सदा लगे रहने वाले, मुक्ति की योग्यता वाले ऐसे शिवभक्तों को शरीर छोड़ने के कारण उत्पन्न आशौच की प्राप्ति असंभव ही है, क्योंकि उनमें सामान्य प्राणियों में रहने वाले दोषों की कोई संभावना नहीं रहती ॥५॥ तो भी सांसारिक क्रियाकलापों में संलग्न शरीर वाले ऐसे भक्तों को देह की उत्पत्ति और विनाश से उत्पन्न हुए आशौच से संपर्क होता ही है। सांसारिक प्रपंचों से अलग रहने वाले यतियों को यह दोष नहीं लगता ॥६॥ संसार का संपर्क ही आशौच की प्राप्ति का मुख्य कारण है, इसलिये शांभवव्रत का पालन करने वाले यदि सांसारिक संगति में पड़े हैं, तो तुम यह निश्चित रूप से समझ लो कि उनको जननाशौच और मरणाशौच अवश्य लगेगा ॥७॥

आशौच के रहते हुए भी शिव की पूजा करने वाले को कोई विघ्न उपस्थित नहीं होता, क्योंकि गुरुदत्त दीक्षा के सामर्थ्य के कारण शिवलिंग की पूजा सभी प्रकार के विघ्नों का नाश कर देती है, अर्थात् इष्टलिंग की पूजा में किसी प्रकार का आशौच नहीं लगता ॥८॥ साथ ही यह भी समझ लेना चाहिये कि अन्य

नैमित्तिकानां नित्यानामन्येषां कर्मणां पुनः ।
आशौचमूलसंकोचस्तुल्य एव ह्यदीक्षितैः ॥९॥
आत्मन्यारोपिता येन ह्यग्नयः सोमपीथिना ।
उत्क्रान्तेरेव तस्य स्यादाशौचं ज्ञातिषु ध्रुवम् ॥१०॥

आशौचद्वैविध्यं चातुर्विध्यं च

जातकं मृतकं चेति ह्याशौचं द्विविधं स्मृतम् ।
तच्चतुर्धाऽल्पमधिकमपूर्णं पूर्णमित्यपि ॥११॥
अल्पकालिकमल्पं स्यादधिकं कालतोऽधिकम् ।
अपूर्णं स्यात् त्रिरात्रादि दशाहादि तु पूर्णकम् ॥१२॥

ज्ञातीनां दम्पत्योः सोदराणां वर्णानां चाशौचकालः

स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्याज्ज्ञातीनां तन्न विद्यते ।
पाते मातुर्माससंख्यं पित्रादीनां दिनत्रयम् ॥१३॥

नैमित्तिक अथवा नित्य कर्मों के सम्पादन के लिये तो अदीक्षित व्यक्तियों के समान दीक्षित व्यक्ति को भी आशौचजन्य नियमों का पालन करना ही पड़ता है॥९॥ सोमयाग का अनुष्ठान करने वाले जिस याजक ने अपने शरीर में अग्नियों को समारोपित कर लिया है, उसकी भी उत्क्रान्ति होने पर बन्धु-बान्धवों को आशौच लगता ही है॥१०॥

जननाशौच और मरणाशौच के भेद से आशौच दो प्रकार का होता है। अल्प, अधिक, पूर्ण और अपूर्ण के भेद से पुनः यह चार प्रकार का होता है॥११॥ अल्पकालिक आशौच अल्प और दीर्घकाल तक रहने वाला आशौच अधिक कहलाता है। तीन रात्रि तक का आशौच अपूर्ण और दशाहव्यापी आशौच पूर्ण कहलाता है॥१२॥

[1]गर्भस्राव होने पर माता को तीन दिन तक का आशौच लगता है, बान्धवों को यह नहीं लगता। गर्भपात होने पर माता को गर्भ कितने मास का था, तदनुसार उतने दिन का तथा पिता को तीन दिन का आशौच लगता है॥१३॥ ब्राह्मण

---

१. गर्भ के ठहरने के उपरान्त चार महीने तक के गर्भ के गिरने को स्राव कहा जाता है। पाँचवें या छठे महीने के गर्भ के गिरने को पात तथा सातवें या इसके पश्चात् गर्भ के गिरने को प्रसूति कहते हैं (धर्म०, पृ० ११६१)।

दशाहमुक्तं विप्रस्य द्वादशाहं नृपस्य तु ।
विशः पञ्चदशाहं तु मासः शूद्रस्य सम्मतम् ॥१४॥
दशाहे समतिक्रान्ते जाताशौचं न विद्यते ।
पुत्रस्य जन्म श्रुत्वा तु जलमाप्लुत्य शुद्ध्यति ॥१५॥
जाते मृते तु ज्ञातीनां सद्यः शुद्धिर्विधीयते ।
दशाहेनैव दम्पत्योः सोदराणां तथैव च ॥१६॥

अजातदन्तादिषु मृतेष्वाशौचकालः

शिशावजातदन्ते तु सद्यः शौचं विधीयते ।
बाले त्वकृतचौले तु स्यादहोरात्रमात्रकम् ॥१७॥
बालस्योपनयात् पूर्वं मातापित्रोस्त्रिरात्रकम् ।
मरणे तूपनीतानामाशौचं पूर्णमीरितम् ॥१८॥
ज्ञातीनां स्याद्दशाहं तु सोदकानां त्रिरात्रकम् ।
सगोत्राणां स्नानमात्रं तदन्येषां न विद्यते ॥१९॥

को दस दिन का, क्षत्रिय को बारह दिन का, वैश्य को पन्द्रह दिन का और शूद्र को एक मास का आशौच लगता है ॥१४॥ अपने परिवार में हुए जननाशौच की सूचना यदि दस दिन के बाद मिलती है, तो ऐसी स्थिति में यह आशौच नहीं लगता। यदि अपने पुत्र के जन्म की सूचना दस दिन के बाद भी मिलती है, तो उसे आशौच लगता है। ऐसी स्थिति में नदी, तालाब आदि में स्नान कर वह शुद्ध होता है ॥१५॥ जन्म लेते ही यदि बालक की मृत्यु हो जाती है, तो बन्धु-बान्धवों की शुद्धि तत्काल हो जाती है। किन्तु माता, पिता और सगे भाई की शुद्धि दस दिन के बाद ही होती है ॥१६॥

दाँत उगने से पहले यदि शिशु की मृत्यु होती है, तब भी बन्धु-बान्धवों की तत्काल शुद्धि मानी जाती है और बालक का जब तक चौल कर्म नहीं होता, उस अवस्था में केवल दिन-रात का ही आशौच लगता है ॥१७॥ बालक की उपनयन से पहले मृत्यु होने पर माता-पिता को तीन रात्रि का और उपनयन हो जाने के उपरान्त मृत्यु होने पर पूरे दस दिन का आशौच पालन करना पड़ता है ॥१८॥

मातुलादिषु मृतेष्वाशौचविधिः

मृतौ तु मातुलादीनां त्रिरात्रमिति चोदितम् ।
मरणे बान्धवानां तु पक्षिण्याशौचमीरितम् ॥२०॥
आ त्रिमासात् त्रिरात्रं स्यादा षण्मासात्तु पक्षिणी ।
आ वत्सरादहोरात्रं ततः स्नानेन शुद्ध्यति ॥२१॥

बहूनामाशौचानां तन्त्रेण शुद्धिः

बहूनामपि सम्प्राप्तौ तन्त्रेणैव हि शुद्ध्यति ।
समानमल्पकं वाऽपि प्रथमेन समापयेत् ॥२२॥

मरणाशौचस्य प्राधान्यम्

जातके मृतकं वाऽपि मृतके वाऽपि जातकम् ।
यदि स्यान्मृतकस्यैव प्राधान्यं परिकीर्तितम् ।
पित्रोस्तु मरणाशौचमन्याशौचस्य बाधकम् ॥२३॥

अपने बन्धु-बान्धवों को ऐसी स्थिति मे दस दिन का और [२]सोदकों को तीन रात्रि का आशौच लगता है। सगोत्रों की केवल स्नान से शुद्धि हो जाती है और इससे आगे की पीढ़ी को यह नहीं लगता॥१९॥

मामा आदि की मृत्यु होने पर तीन रात का और बन्धु-बान्धवों के मरने पर दो रात्रि तक का आशौच रहता है॥२०॥ तीन मास तक मरण की सूचना मिलने पर तीन रात्रि का, छः मास तक सूचना मिलने पर दो रात्रि तक का और वत्सर पर्यन्त सूचना मिलने पर एक अहोरात्र का आशौच लगता है। इसके बाद सूचना मिलने पर केवल स्नान से शुद्धि हो जाती है॥२१॥

अनेकविध आशौचों की एक साथ प्राप्ति होने पर सबकी शुद्धि एक साथ हो जाती है। समान दिन का अथवा कम दिन का आशौच प्रथम आशौच के साथ समाप्त हो जाता है॥२२॥

---

२. धर्मशास्त्र में कुल–परम्परा को सपिण्ड, सोदक और सगोत्र नाम दिया गया है। सात पीढ़ी तक सपिण्ड, सात से आगे चौदह पीढ़ी तक सोदक और उससे आगे २१ पीढ़ी तक के स्वजन सगोत्र कहलाते हैं। धर्मशास्त्र० (पृ० ११६१-११६२) देखिये।

पितुर्दशाहमध्ये तु माता यदि मृता भवेत् ।
पितुः पूर्णं तु निर्वर्त्य मातुर्गृह्णीत पक्षिणीम् ॥२४॥

शवानुगमे शुद्धिविधिः

अनुगम्य शवं विप्रो ज्ञातेरन्यस्य वा पुनः ।
स्नात्वा च भस्मनोद्धूल्य मां दृष्ट्वैव विशुद्ध्यति ॥२५॥

नैष्ठिकादीनामाशौचं नास्ति

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
न जन्ममरणोद्भूतमाशौचमिह विद्यते ॥२६॥

सद्यःशौचविधानम्

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते ॥२७॥

जननाशौच के समय मृतकाशौच अथवा मृतकाशौच के समय जननाशौच यदि आ जाता है, तो इसमें मृतकाशौच ही प्रधान माना जाता है। इसी तरह से माता-पिता की मृत्यु का आशौच अन्य आशौचों का बाधक माना जाता है ॥२३॥ पिता की मृत्यु के दस दिन के भीतर यदि माता की मृत्यु हो जाती है, तो पिता के आशौच का पूरी तरह पालन करने के उपरान्त माता के लिये दो रात का आशौच अतिरिक्त पालना चाहिये ॥२४॥

ब्राह्मण ज्ञाति-बन्धु के या अन्य किसी के शव का अनुगमन करे, तो उस दशा में स्नान करने, भस्मोद्धूलन करने और मेरे दर्शन करने के उपरान्त ही शुद्ध होता है ॥२५॥

नैष्ठिक [३]ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति को जन्म और मरण से उत्पन्न आशौच नहीं लगता ॥२६॥

दान देते समय, विवाह, यज्ञ, संग्राम, देशविप्लव आदि अवसरों पर और अतीव कष्टकारी आपत्ति के आ जाने पर तत्काल शौच का विधान है ॥२७॥

---

३. जन्म और मरण से उत्पन्न आशौच सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त व्यक्तियों के लिये ही माना गया है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति इस व्यवहार से अलग रहते हैं, अतः उनको यह नहीं लगता।

सन्ध्या पूजा च कदापि न त्याज्या

सूतके मृतके चैव सन्ध्यां पूजां न सन्त्यजेत् ।
उपांशुसन्ध्यां पूजां तु कुर्यात् त्रिकरणैरपि ॥२८॥

ग्रन्थोपसंहारः

शाम्भवव्रतिनां धर्माः संक्षेपेण मयेरिताः ।
श्रद्धावन्तो विमुच्यन्ते क्लिश्नन्त्यन्ये विमोहिताः ॥२९॥
मकुटं धर्मशास्त्रं तु मदीयं मकुटायितम् ।
पठनीयं प्रयत्नेन मत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणा ॥३०॥

इति श्रीमकुटागमे उत्तरभागे चर्यापादे आशौचविधिकथनं नाम दशमः पटलः ॥१०॥

समाप्तश्चायं मकुटागमः ॥

जननाशौच और मरणाशौच के आने पर भी सन्ध्या और इष्टलिंग की पूजा कभी न छोड़े। ऐसी स्थिति में त्रिकरण (मन, वचन, शरीर) पूर्वक उपांशु विधि से सन्ध्या और इष्टलिंग की पूजा की जाती है, अर्थात् जननाशौच, मरणाशौच आदि से उत्पन्न सूतक के उपस्थित होने पर दूसरों को सुनाई न दे, इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करते हुए सन्ध्या और इष्टलिंग की पूजा करे॥२८॥

इस तरह से मैंने शांभवव्रत का पालन करने वालों के लिये धर्मों को संक्षेप में कहा है। जो इस पर श्रद्धा रखते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं और श्रद्धारहित व्यक्ति मोह में पड़ कर दुःख पाते हैं॥२९॥

मेरे द्वारा उपदिष्ट यह मकुट नाम का धर्मशास्त्र सब शास्त्रों का मकुटमणि है। जो मेरा अनुग्रह चाहते हैं, उनको इसका अध्ययन प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥३०॥

इस प्रकार मकुटागम के उत्तर भाग के चर्यापाद का यह आशौचविधि का कथन करने वाला दसवाँ पटल पूरा हुआ॥१०॥

यह मकुटागम भी समाप्त हुआ॥

परिशिष्टानि

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायक ग्रन्थ-सूची

श्लोकार्धानुक्रमणी

सहायक ग्रन्थ-सूची

अथर्वशिर उपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।

अनुभवसूत्रम् — तन्त्रसंग्रह, भाग १, पृ० १२९-१७४, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् १९७०

अमरकोशः सुधाव्याख्यासहितः — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९

अष्टप्रकरणम् — (तत्त्वप्रकाश - तत्त्वसंग्रह - तत्त्वत्रयनिर्णय - रत्नत्रय - भोगकारिका - नादकारिका - मोक्षकारिका - परमोक्षनिरासकारिकाख्यप्रकरणाष्टकात्मकम्), सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८८

अष्टावरण विज्ञान (हिन्दी) — डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य, श्री गुरु अमरेश्वर प्रकाशन, अमरेश्वर मठ, गुलेदगुड्ड, कर्णाटक, सन् १९८५

आगम और तन्त्रशास्त्र — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४

ईश्वरगीता कूर्मपुराणान्तर्गता — कूर्मपुराण द्रष्टव्य।

उपनिषत्संग्रहः — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९७०

ऋग्वेदः (मूलमात्रम्) — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।

ऋग्वेदः (खिलभागः) — सातवलेकर संस्करण, पूर्ववत्।

ऋजुविमर्शिनी — नित्याषोडशिकार्णव द्रष्टव्य।

कर्मकाण्डक्रमावली (सोमशम्भुपद्धतिः) — कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९४७

कात्यायनयज्ञपद्धति विमर्श (हिन्दी) — डॉ० मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, सन् १९८८

कारणागमः — पं० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड़ लिपि)।

कूर्मपुराणम् — मनसुखराय मोर, कलकत्ता, सन् १९६२

कूर्मपुराण : धर्म और दर्शन (हिन्दी) — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९९४

गणकारिका — गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ोदा, सन् १९६६

चन्द्रज्ञानागमः — पं० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०, १९५६ (कन्नड़ लिपि)।

चन्द्रज्ञानागमः — शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

तत्त्वप्रकाशः — अष्टप्रकरण देखिये।

तन्त्रयात्रा (संस्कृत) — प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी, रत्ना पब्लिकेशंस वाराणसी, सन् १९८३

तन्त्रसंग्रहः — (वातुलशुद्धाख्य - सूक्ष्म - देवीकालोत्तर - पारमेश्वरतन्त्रात्मकः)। शंकरप्पा अच्चय्या टोपिगि, मैसूर, सन् १९४१

तन्त्रालोकः, विवेकव्याख्यासहितः — (१२ भागात्मकः) कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली, श्रीनगर, सन् १९१८-१९३८

तैत्तिरीयसंहिता — सातवलेकर संस्करण, स्वाध्याय मंडल, पारडी।
तैत्तिरीयारण्यकम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।
धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) — तृतीय भाग, हिन्दी समिति, लखनऊ, सन् १९७५
नारदीयमहापुराणम् — नाग पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८४
निगमागम संस्कृति (हिन्दी) — वीरशैव अनुसन्धान संस्थान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९२
नित्याषोडशिकार्णवः (ऋजुविमर्शिनी-अर्थरत्नावलीटीकाद्वयसहितः) — सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९६८
नेत्रतन्त्रम् उद्योतसहितम् — परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली, सन् १९८५
पातञ्जलयोगसूत्रं सभाष्यम् — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १९३२
पाशुपतसूत्रं पञ्चार्थभाष्यसहितम् — त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रन्थमाला, त्रिवेन्द्रम्, सन् १९४०
प्रपञ्चसारः (भागद्वयात्मकः) — आगमानुसन्धान परिषद्, कलकत्ता, सन् १९३५
बृहदारण्यकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।
भगवद्गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर।
भस्मजाबालोपनिषद् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।
भागवतमहापुराणम् — गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१०
मकुटागमः — पं० काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४०,१९५६ (कन्नड़ लिपि)।
मनुस्मृतिः (भाषानुवादसंहिता) — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९२९
महानारायणोपनिषत् — केदारनाथ शिवतत्त्व ग्रन्थमाला, काशी, सन् १९२९
महाभारतम् — गीता प्रेस, गोरखपुर।
मुण्डकोपनिषत् — उपनिषत्संग्रह द्रष्टव्य।
याज्ञवल्क्यस्मृतिः — स्मृतिसन्दर्भ, भाग ३, मनसुख राय मोर, कलकत्ता, सन् १९५२
योगिनीहृदयं दीपिकासहितम् — मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, सन् १९८८
लिङ्गधारणचन्द्रिका — शैवभारती भवन, जंगमवाडी मठ, वाराणसी, सन् १९८८
लुप्तागमसंग्रहः (द्वितीय भाग)—सं० सं० वि० वि०, वाराणसी, सन् १९८३
वचन परिभाषा कोश (कन्नड़) — कन्नड़ मत्तु संस्कृति निदेशालय, बंगलोर, सन् १९९३
वरिवस्यारहस्यम् — अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार, मद्रास, सन् १९४८
वाल्मीकिरामायणम् — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सन् १९५७
वीरशैवदीक्षाविधिः — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, शोलापुर, सन् १९०६
वीरशैवलिङ्गिब्राह्मणदशकर्मपद्धति — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, शोलापुर, सन् १९०६
वीरशैवाचारप्रदीपिका — श्री मल्लिकार्जुन शास्त्री, शोलापुर, सन् १९०५
शिवपुराणम् — पण्डित पुस्तकालय, काशी, संवत् २०२०

शिवागमसंग्रहः — (चन्द्रज्ञान - कारण - मकुट - सूक्ष्मागमाः) । श्री काशीनाथ शास्त्री, श्री पंचाचार्य इलेक्ट्रिक प्रेस, मैसूर, सन् १९४० (कन्नड़ लिपि)।

शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनसंहिता, उव्वटमहीधरभाष्यसहिता — मोतीलाल बनारसीदास, सन् १९८७

षट्चक्रनिरूपणम् — चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, सन् १९९१

सांख्यकारिका, सांख्यतत्त्वकौमुदीसहिता — चौखम्बा संस्कृत सिरीज, वाराणसी, सन् १९३२

सिद्धान्तशिखामणिः सव्याख्या — शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९३

सिद्धान्तशिखामणिसमीक्षा — शैवभारती भवन, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९८९

सूक्ष्मागमः — शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी, सन् १९९४

सूतसंहिता (स्कन्दपुराणीया) — ३ भाग, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, सन् १९२४-२५

सोमशम्भुपद्धतिः — कर्मकाण्डक्रमावली द्रष्टव्य ।
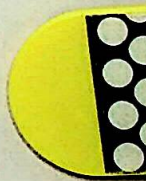
जंगमवाडी मठ में उपलब्ध ग्रन्थ

(१) लिङ्गधारणचन्द्रिका (हिन्दी भावानुवादसहित)

(२) सिद्धान्तशिखामणिः, तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्या[illegible]सहितः [illegible]राठी भावानुवाद-सहितश्च। सं० ज० डॉ० चन्द्रशेखर शि[illegible]र्य महा[illegible]मी, विशेष आवृत्ति

(३) श्रीकण्ठभाष्यम् (चतुःसूत्री) अप्पयदीक्षितकृत[illegible]वार्कमणि[illegible] दीपिकासंस्कृत-टीकासहितम्

(४) वीरशैव अष्टावरण विज्ञान (मराठी और हिन्दी) (भाग १-१३) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(५) जन्म हा अखेरचा (मराठी) (भाग १-१३) ज० डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(६) सिद्धान्तशिखामणि-समीक्षा (संस्कृत-शोधप्रबन्ध) डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी

(७) श्रीशिवपूजाविधिः (मराठी)

(८) महानारायणोपनिषद् (वीरशैवभाष्य)

(९) शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत (मराठी)

(१०) सिद्धान्तशिखामणिः (मूलमात्र)

(११) निगमागम संस्कृति (हिन्दी) पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१२) वीरशैव पंचपीठ परंपरा (मराठी) अनुवादक डॉ० चन्द्रशेखर कपाळे

(१३) ईशावास्योपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१४) केनोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१५) मुण्डकोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१६) सिद्धान्तशिखोपनिषद् (शाङ्करी व्याख्योपेता)

(१७) सूक्ष्मागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१८) चन्द्रज्ञानागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(१९) मकुटागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० व्रजवल्लभ द्विवेदी

(२०) कारणागमः, हिन्दी भावानुवादसहितः, सं० पं० रामचन्द्र पाण्डेय